शाहआलम ने महाराज जयसिंह को पदच्युत करके

प्रकाशक का वक्तव्य

श्री अवध उपाध्याय संसार-प्रसिद्ध विद्वान हैं। हिन्दी संसार भी उनसे भली भाँति परिचित है। इस पुस्तक का उन्होंने ही संपादन किया है।

प्रारंभ में लड़के चित्रों को बहुत पसन्द करते हैं। और इसकी सहायता से सुगमता से विषय को समझ जाते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि जिस बात को लड़के यों नहीं समझते उसीको चित्रों की सहायता से बड़ी सुगमता से समझ जाते हैं। इसी कारण से इस पुस्तक में चित्रों का अधिक प्रयोग किया गया है। अध्यापकों को चाहिये कि पाठ पढ़ाने के पहले केवल चित्रों की सहायता से ही सब बातें लड़कों को ज़बानी समझा दें। इस प्रकार लड़के बड़ी सुगमता से पुस्तक की सब बातें समझ जायँगे।

पुस्तक को अधिक रोचक बनाने के लिए रंगीन रोशनाई का भी प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पाठ के चुनने में भी बड़ी सावधानी से काम लिया

गया है। यह सब होते हुए भी इसका दाम केवल ।=) रक्खा गया है।

'मातृ-भूमि' नामक पाठक वास्तव में बहुत अच्छा है और लड़कों के हृदय में 'देश प्रेम' उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगा। 'उपदेशरत्न माला' और 'नीति कुसुममाला' वास्तव में बहुत ही अधिक शिक्षाप्रद पाठ हैं। महात्मा तुलसीदास जी के उपदेश से भी लड़कों को शिक्षा मिलेगी। इस भाग में गद्य और पद्य दोनों सावधानी के साथ रखे गये हैं और उनके क्रम का अधिक ध्यान रखा गया है। 'बुद्धि का मूल्य' नामक पाठ पठनीय है। इससे विद्यार्थियों को बुद्धि का बहुत कुछ महत्व मालूम हो जायगा। पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों को बहुत ही लाभदायक होगी।

रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

विषय-सूची

पृष्ठ १३७

बाल-प्रभाकर

चौथा भाग

पहिला पाठ

मातृ-भूमि

वसुन्धरा—पृथ्वी। अन्य—दूसरा। अनुपमेय—जिसकी समता न हो सके। सुरसरिता—गङ्गा। रवितनया—यमुना। पद-रज-पूत—पैर की धूल से पवित्र। श्लाघा—बड़ाई। अनिर्वचनीय—अकथनीय। अभिराम—मनोहर।

(१)

हे जननी! हे भारतमाता! धन्य धन्य तू धन्य!
वसुन्धरा पर तेरी नाईं देश नहीं है अन्य।
रहता तुझमें सदा प्रकृति का अनुपमेय सौंदर्य॥
वस्तु वस्तु में भरा दीखता है कैसा माधुर्य।
मातृ-भूमि! हे प्राण हमारी!! हे प्रिय भारत अम्ब!!!
चारु मनोहर बनी रहै तू जब लौं शशि-रवि-बिम्ब।

(२)

उत्तर में तब खड़ा हुआ है हिमगिरि अगम विशाल।
फाटक के पहरे पर मानों बैठा है रखवाल॥

सुरसरिता कहीं खेल रही है, रवितनया के संग।
कहीं नर्मदा कहीं महानद ! ब्रह्मपुत्र वा सिन्धु-तरंग ॥
मातृ-भूमि ! हे प्राण हमारी !! हे प्रिय भारत अम्ब !!!
चारु मनोहर बनी रहै तू, जब लौं शशि-रवि-बिम्ब ॥

(३)

नील सतपुड़ा विन्ध्याचल से कहीं अरण्य अगम्य।
विविध-कन्दरा-पल्लव-भूषित है जो अति ही रम्य ॥
मुकुलित वृक्षों पर कलरव हैं करते जहाँ विहङ्ग।
मानों क्रीड़ा करता होवे लेकर चमू अनङ्ग ॥
मातृ-भूमि ! हे प्राण हमारी !! हे प्रिय भारत अम्ब !!!
चारु मनोहर बनी रहै तू जब लौं शशि-रवि-बिम्ब ॥

(४)

प्रभु ने जिस पवित्र धरती का करने को उद्धार।
क्रीड़ा की मानव-तनु धर कर देखो कतिपय बार ॥
उस प्रभु-पद-रज-पूत भूमि की हम ही हैं सन्तान।
हृदयोल्लासित हो उठते हैं आहा ! हम यह जान ॥
मातृ-भूमि ! हे प्राण हमारी !! हे प्रिय भारत अम्ब !!!
चारु मनोहर बनी रहै तू जब लौं शशि-रवि-बिम्ब ॥

(५)

तू जननी सब भाँति हमारी है अति ही रमणीय।
करैं कहा लौं श्लाघा तेरी अहो अनिर्वचनीय ॥

किसे न प्रमुदित करता तेरा भला रूप अभिराम ।
हे माता ! तुझको मेरा है बारम्बार प्रणाम ॥
मातृ-भूमि ! हे प्राण हमारी !! हे प्रिय भारत अम्ब !!!
चारु मनोहर बनी रहै तू जब लौं शशि-रवि-बिम्ब ॥

श्रीमुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

प्रश्न

१—मातृ-भूमि का गद्य में वर्णन करो ?
२—ईश्वर क्यों मनुष्यतन धारण करते हैं ?

दूसरा पाठ

उपदेश-रत्न-माला

आदर्श—नमूना । कनी—छोटे टुकड़े । भूत—जो बीत गया ।

१—ईश्वर पूर्ण और पवित्र है । उसको छोड़ मनुष्य के लिये और कोई पूर्ण आदर्श नहीं है ।

२—पिता, माता और गुरु ईश्वर के प्रतिनिधि हैं और साक्षात् ईश्वर की भाँति पूज्य हैं ।

३—पवित्र हृदय ही स्वर्ग लोक और ईश्वर की भक्ति ही उत्तम निवास-भूमि है ।

४—पाप-हृदय नरक है और पिशाचों का नाच-घर है ।

५—नेत्र, बिना आँसुओं से धुले पवित्र नहीं होते और अलौकिक सत्य-राज्य को देख नहीं सकते।

६—उन्नति के पाँच साधन हैं—१ सुजन्म, २ सुशिक्षा, ३ सुसंग, ४ सुसाधन और ५ ईश्वर की कृपा।

७—दुःख, शोक और मृत्यु के बराबर मित्र दूसरा और कौन है? ये सोते हुए मनुष्य को जगा कर, परम मित्र परमेश्वर का स्मरण करा दिया करते हैं।

८—संसार में जय और पराजय दोनों हैं और उन्हींके अनुसार कीर्त्ति और निन्दा प्राप्त होती है। सत्यमार्ग पर चलने से सफलता प्राप्त हो या न हो, पर कीर्त्ति तो प्राप्त होती ही है।

९—चन्दन के वृक्ष के समीप रहने से अन्य छोटे छोटे वृक्ष भी चन्दन की सुगन्धि पा जाते हैं। केवल बाँस सिर उठाये रहता है, इसी लिए वह कोरा बाँस का बाँस ही बना रहता है।

१०—चित्र में स्वेत और श्याम दोनों रंगों का रहना आवश्यक है। मानवी जीवन में सुख और दुःख दोनों ही समान रूप से अपेक्षित हैं।

११—बड़े बनना चाहो तो छोटे बनो। ईश्वर आकाश से भी बड़े और छोटे से छोटे हैं। वह बालू की कनी के

भी भीतर हैं। छोटे बनने पर भी उन्हें दुःखी नहीं होना पड़ता।

१२—आगे पीछे—भूत भविष्य के सोच में पड़, व्यर्थ समय नष्ट न कर, वर्तमान में अपना कर्त्तव्य पूरा करो। ऐसा करने से भूत का दोष मिट जायगा और भविष्यत् की कमी भी पूरी हो जायगी।

१३—कायर भय की दुहाई में आलसी बनते हैं। साधुजन हानि लाभ को ईश्वर के हाथ में सौंप, अच्छे कर्मों के साधन में प्राणों तक की परवाह नहीं करते।

१४—जो मनुष्य सब तज हरि को भजता है और सब सोचों को त्याग कर, केवल ईश्वर को सोचता है, ईश्वर भी उस भक्त की बात सोचा करते हैं और उसका भार स्वयं उठा लेते हैं।

१५—जो गेहूँ का दाना माँग कर अपनी जान बचाता है, उसका जीवन व्यर्थ है। जो दाना मर कर सड़ जाता है, उससे सैकड़ों गेहूँ उपजते हैं। स्वार्थीजन का जीवन विफल है। जो परहित में अपना जीवन लगाता है उसका जीना सफल है और वही अमर भी बन जाता है।

प्रश्न

१—उन्नति के साधन कै हैं? और कौन कौन हैं?

२—नवें पैरा का भावार्थ लिखो ?
३—जीवन किसका सफल है ?

तीसरा पाठ

नीति-कुसुममाला

खल—दुष्ट। उपद्रव—उत्पात। वेधने—छेदने। निवृत्ति—छुटकारा। काकली—कोयल की बोली।

१—पारस पत्थर के छूने से लोहा सोना बन जाता है। साधु के सत्संग से असाधु साधु बन जाता है। सागर के जल में मिल गंगा का स्वादिष्ट मधुर जल भी खारी हो जाता है। खल के कुसंग से भले मनुष्य का स्वभाव भी नष्ट हो जाता है।

२—इस लिये यदि किसी का स्वभाव जानना हो तो देखना यह चाहिये कि उसका संग कैसे लोगों का है। सावधान! भूल कर भी दुर्जन का संग न करना। सुजन के पास भले ही धन दौलत न हो, किन्तु उससे हितकारी उपदेश अवश्य मिलेंगे। बड़ के पेड़ से फल फूल मिलने की आशा नहीं है, पर शीतल छाया तो मिलेगी।

३—संसार में साँप और खल के स्वभाव को परखो। यद्यपि अवसर मिलने पर दोनों ही आग उगलते हैं, तथापि दोनों में भेद है। साँप तो भीतर बाहिर एकसा है।

परन्तु खल के पेट में हलाहल और मुख में अमृत यानी मिठास है। साँप को देख कर लोग उससे दूर भाग जाते हैं, पर खल के जाल फरेब से बचने वाले विरले ही हैं। खल अवसर हाथ लगने पर अपने मित्र के पेट में छुरी भोंकने में भी नहीं हिचकिचाता।

४—मक्खी भले चंगे शरीर पर नहीं बैठती, पर जहाँ घाव, फुँसी या पसीना है, वहीं जा कर बैठती है। यदि दूध और पानी मिला कर हंस को दो, तो वह पानी छोड़ कर दूध ही पी लेता है। खल को मक्खी और सज्जन को हंस समझो। खल दूसरों के दोषों ही को लखता है। सज्जन गुण ही का ग्राहक होता है।

५—घर के बाहर अनेक उपद्रवों को देख चूहे घर के भीतर जा बैठते हैं। जिस घर में बैठते हैं वहाँ रखी हुई यावत् वस्तुओं को नष्ट कर देते हैं। मानवी शरीर के भीतर भी छः चूहे घुसे हुए हैं। ये भी रात दिन गृहस्थ का अनिष्ट ही किया करते हैं। विवेक नामी बिल्ली पाले बिना, वे छः चूहे नष्ट नहीं किये जा सकते। यदि उन चूहों के नष्ट करवाने में प्रमाद किया जायगा, तो वे ऐसा करने वाले को नष्ट कर डालेंगे। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर और लोभ ये ही छः चूहे या षड्रिपु हैं।

६—अच्छे कुल में जन्म लेने ही से कोई अच्छा नहीं

कहा जा सकता। उपजाऊ खेत में जो काँटे के पेड़ उग आते हैं, क्या उनमें वेधने की शक्ति नहीं रहती।

७—महान् के दुर्वचन तो सह भी लिये जा सकते हैं किन्तु महान् के बल से बलवान छोटे मनुष्य के दुर्वचन नहीं सहे जाते। सूर्य का प्रचंड ताप तो सह लिया जाता है, परन्तु सूर्य की किरणों से तपी हुई बालू की गरमी नहीं सही जाती।

८—उत्तम की प्रीति या उत्तम की शत्रुता पत्थर पर की लकीर के बराबर होती है। मध्यम की प्रीति वा शत्रुता बालू की लकीर की भाँति होती है। अधम की प्रीति या शत्रुता जल की रेखा के समान है।

९—हास्य से भी बहुधा अनिष्ट होता है। बिजली देखने में तो चमकदार होती है, परन्तु उससे भयानक वज्र-पात भी होता है।

१० रात दिन शास्त्र पढ़ने ही से ज्ञान नहीं प्राप्त होता। दवा का नाम मात्र लेने से रोग की निवृत्ति नहीं होती।

११—मूर्ख को उपदेश देने से वह शांत होने के बदले और भी अधिक कुपित होता है। सर्प का विष उसे दूध पिलाने से घटता नहीं, बल्कि बढ़ता है।

१२—बालकों का मन बहुत कोमल होता है। बाल-पन में उनके मन में जो विश्वास जम जाता है बड़े होने पर वह नहीं उखड़ता। कुम्हार कच्चे बरतन पर जो रेखायें काढ़ता है, वे फिर नहीं मिटतीं।

१३—समय के फेर से अपने भी वैरी बन जाते हैं, और समय ही के फेर से पराये भी अपने हो जाते हैं। शरीर में उपजा हुआ रोग प्राणनाशक होता है और जगंल में उत्पन्न हुई बूटी जीवन देती है।

१४—सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख—यही संसार का नियम है।

१५—छोटा मनुष्य भी महान् की संगत पा कर बड़े बड़े उद्देश्यों का साधन कर सकता है। जल से भींगी हुई मिट्टी नदी के साथ मिल कर, महासागर से भेंट कर लेती है।

१६—खोटे मनुष्य अपना दुष्ट अभिप्राय पूरा करने ही के लिए गुणियों की बातें सुना करते हैं। व्याध नली लगा कर पकड़ने के लिए ही कोकिला की काकली सुनता है। आनन्द पाने के लिये नहीं।

प्रश्न

१—खल और सर्प में क्या अन्तर है?

२—मक्खी और हंस से किसकी तुलना की गयी है?

३—शरीर के भीतर कौन से छः चूहे हैं और उनका कैसे नाश होता है ?

४—उत्तम, मध्यम, अधम की प्रीति कैसी होती है ?

चौथा पाठ

सच्ची मैत्री

अनुयायी—पीछे चलने वाला, मतावलम्बी। अन्ततः—आखीर में।

यूनान देश में डेमन और पीथियास दो मित्र थे। डेमन पैथोगोरस का अनुयायी था। इसलिये डामोसियस ने इसको फाँसी की आज्ञा दे दी। डेमन ने फाँसी के पहले अपने परिवार से मिलने की इच्छा प्रकट की। निर्दयी शासक ने आज्ञा दी कि, तुम घर जा कर अपने कुटुम्ब से मिल सकते हो, परन्तु अपने बदले एक दूसरा मनुष्य दे जाओ। यदि तुम निश्चित समय पर न आओगे, तो उसे फाँसी दे दी जावेगी।

पेथियास ने जो डेमन का सच्चा मित्र था, अपने मित्र की इच्छा पूर्ण करने का दृढ़ विचार कर लिया। अपने को शासक के हाँथ में सौंप, अपने मित्र को घर जाने की आज्ञा दिलवा दी। अन्ततः वह समय और तिथि आ पहुँची, परन्तु डेमन न आया।

पेथियास को फाँसी की आज्ञा हुई। वह तैयार हो कर,

फाँसी के स्थान पर आ पहुँचा। विरुद्ध वायु के कारण जहाज़ के लौटने में देर लग गई थी। पेथियास ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि, भला हो डेमन न लौटे और मुझे मैत्री पूरी करने का अवसर प्राप्त हो।

उधर जल्लाद ने पेथियास को फाँसी पर लटकाने की तैयारी की, इधर डेमन तेज़ी से घोड़े को दौड़ता हुआ पसीने में भीगा उस स्थान पर आ पहुँचा। अब उन दो मित्रों में विचित्र और स्नेहयुक्त विवाद आरम्भ हुआ। पेथियास कहता था तुम अब पिछड़ गये मुझे फाँसी होनी चाहिये। डेमन कहता था कि, नहीं; फाँसी की आज्ञा तो मुझे मिली है मुझे फाँसी होनी चाहिये। दोनों ने डामो-सियस से अपनी अपनी फाँसी की अपील की।

यद्यपि डामोसियस बड़ा ही निर्दयी शासक था; तथापि इस विचित्र दृश्य को देख वह चकित हो गया। उसने तुरन्त ही फाँसी की आज्ञा उठा ली और दोनों से नम्रता पूर्वक कहा कि, अब तुम दोनों मेरे मित्र बनो और मुझे भी ऐसा ही अपना सच्चा मित्र समझो।

बालको! सच्चे स्नेह ही में आनन्द रहता है और सच्चे मित्र जो कार्य्य करते हैं, उसमें सदा सफलता प्राप्त करते हैं।

प्रश्न

१—किसको फांसी की आज्ञा हुई और किस शर्त पर वह अपने परिवार से मिलने गया ?

२—वह फांसी से क्यों बचा ?

३—डामोसियस ने अन्त में क्या कहा ?

पाँचवाँ पाठ

राजदण्ड का महत्व

सहोदर—सगा। स्वागत—आतिथ्य सत्कार। अपराधी—दोषी। क्षमता—शक्ति। आपत्ति—दलील, तर्क वितर्क। प्रायश्चित—शुद्धि। तर्पण—जलांजली। अनावश्यक—बेमतलब। व्यवस्था—विधि।

प्राचीन काल में बाहुदा नदी के किनारे दो तपस्वी सहोदर रहते थे। दोनों तपस्वियों के आश्रम अलग अलग थे। इनमें से एक का नाम था लिखित और दूसरे का शङ्ख। एक दिन लिखित अपने भाई शख से मिलने के लिये उनके आश्रम पर आये। परन्तु शंख कहीं गये हुए थे, आश्रम में न थे। लिखित वहीं टहलने लगे। शंख के आश्रम में अच्छे अच्छे वृक्ष फलों फूलों से लदे हुए लगे थे। इतने में लिखित की दृष्टि एक वृक्ष पर पड़ी, जिसमें अच्छे पके कई एक फल लटक रहे थे। लिखित ने उसके कुछ फल तोड़ कर खा लिये। इतने ही में शंख लौट कर अपने आश्रम में आ गये।

लिखित को फल खाते देख, शख ने उनसे पूछा—“ भाई ! तुम्हें ये फल कहाँ से मिले ? ” शख ने उत्तर दिया—“ भैया ! ये तो आपके आश्रम के एक वृक्ष ही से मैंने लिये हैं । ” यह सुन शंख बहुत दुःखित हो कहने लगे—“ भाई ! तुमने बड़ा बुरा काम किया । हमसे पूँछे बिना हमारे वृक्षों से फल तोड़ कर खाना, चोरी करना हुआ । अतएव तुम अभी राजा के पास जाओ और जाकर उससे दण्ड के लिए प्रार्थना करो । ”

लिखित बिना कुछ आपत्ति किये भाई के आज्ञानुसार प्रद्युम्न राजा के पास चले गये । उनको आते देख, राजा प्रद्युम्न ने उनका स्वागत किया और उनसे दर्शन देने का कारण पूँछा । लिखित बोले—“ महाराज ! मैंने अपने भाई शंख से पूँछे बिना उनके एक वृक्ष के कुछ फल तोड़ कर खा लिये हैं और यह चोरों का काम मुझसे बन पड़ा है । अतः मुझे चोरी का दण्ड दीजिये । ”

इस पर राजा कहने लगे—“ जिस प्रकार राजा को किसी अपराधी को दण्ड देने का अधिकार है, वैसे ही विशेष दशा में अपराधी को दण्ड से मुक्त कर देने का भी उसे अधिकार है । इस अधिकार के अनुसार मैं आपको दण्ड से मुक्त करता हूँ । ” लिखित कहने लगे—“ नहीं, मुझे मेरे अपराध के लिये दण्ड मिलना चाहिये । क्योंकि, राजा अपराधी को

दण्ड से मुक्त कर देने का तो अधिकारी है, परन्तु. दण्ड भोगे बिना अपराधी को पाप के फल से मुक्त करने की क्षमता राजा भी नहीं रखता। आप भले ही मुझे दण्ड से मुक्त कर दें, पर मैं पाप से छुटकारा नहीं पा सकता।"

लिखित की इस आपत्ति को सुन, राजा को विवश हो उन्हें चोरी का दण्ड देना पड़ा और उन्होंने लिखित के दोनों हाथ कटवा दिये। चोरी करने का दण्ड पाकर लिखित अपने भाई शंख के पास गये और बोले—"भैया! मैं दण्ड भोग चुका। देखो राजा ने मुझे यह दण्ड दिया है। अब मुझे मेरे अपराध के लिये आप क्षमा करें।" लिखित के हाथ कटे देख, शंख के नेत्रों में आँसू आ गये और बड़े स्नेह के साथ लिखित से बोले—"भाई! तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया, जिसके लिये मैं तुम्हें क्षमा करूँ। तुमने पाप किया था उसका प्रायश्चित्त मैंने तुमसे करवाया है। अब तुम बाहुदा नदी में स्नान कर विधिवत् देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करो।"

अपने भाई में लिखित की पूर्ण भक्ति और श्रद्धा थी। इसलिये उन्होंने उस समय यह तर्क न की कि—"भाई साहब! आप तर्पण करने की तो आज्ञा दे रहे हैं, पर किञ्चित इस ओर भी तो ध्यान देते कि, बिना हाथों के कहीं तर्पण हो सकता है?" लिखित तो भाई की आज्ञा

पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अतः वे बिना कुछ कहे चले गये और नदी के जल में स्नान कर उन्होंने ज्योंही तर्पण करना चाहा, त्योंही उनके हाथ ज्यों के त्यों हो गये। तर्पण कर चुकने पर वे प्रसन्न होते हुए दौड़ कर भाई के चरणों पर गिरे और अपने दोनों हाथ दिखलाये।

शंख ने कहा—"लिखित! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सब हमारी तपस्या का प्रभाव है।"

इस पर लिखित ने कहा—"भैया! यदि ऐसा ही था, तो मुझे राजा के पास भेजना अनावश्यक था। आप तो अपने तपःप्रभाव से मुझे स्वय पवित्र कर सकते थे।

इसके उत्तर में शंख ने कहा—"भैया! तुम यहाँ भूलते हो। पाप दण्ड ही से दूर होता है और राजा को छोड़ कर किसी को भी दण्ड देने का अधिकार नहीं है। तुम्हें राजा के पास भेजने का यही कारण था। राजा ने तुम्हें दण्ड दिया इससे तुम्हारा तो पाप दूर हो गया और राजा ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। साथ ही और लोगों को इससे शिक्षा मिली। अतः इस व्यवस्था से केवल तुम्हारा और राजा ही का मंगल नहीं हुआ, किन्तु जनसमाज का भी बड़ा कल्याण हुआ है। क्योंकि, पापी को यदि दण्ड न

दिया जाय, तो अन्य लोगों को पाप करने का उत्साह होता है और जब पाप और पापियों की संख्या बढ़ती है, तभी संसार का अमंगल होता है।"

प्रश्न

१—लिखित ने क्या पाप किया था और राजा ने क्या दण्ड दिया?

२—शंख ने लिखित को राजा के पास क्यों भेजा?

३—लिखित के दोनों हाथ पुनः कैसे हो गये?

४—अपराधी को दण्ड न देने से क्या हानि है?

छठवाँ पाठ

ज्वालामुखी पर्वत और भूडोल

ज्वाला—लपट, लौ। तत्कालीन—उस समय के। समृद्धि शाली—ऐश्वर्य सम्पन्न। शतांश—सौवां भाग। दैवी—ईश्वरी। उत्पात—उपद्रव।

पृथ्वी के भीतरी गर्म भागों से निकलती और जलती हुई राख से बने हुए पहाड़ों को ज्वालामुखी पहाड़ कहते हैं। पृथ्वी के भीतरी भागों में नीचे से ज्वाला सी उठती है। यह गली हुई चट्टान बिल्कुल धधकती हुई राख का रूप धारण कर लेती है। कितने ज्वालामुखी इस समय देखने को मिल सकते हैं और इनसे भी अधिक ऐसे मिलेंगे, जो

किसी समय ज्वालामुखी थे, परन्तु अब वे ठंडे पड़ गये हैं। ज्वालामुखी पर्वतों में इटली देश का वेसुवियस सब से अधिक विख्यात है। इटली देश में सन् ७९ ई० में एक बड़ा भयानक ज्वालमुखी फटा था, जिसने हरक्यूलेनियम और पाम्पायी नामक तत्कालीन प्रसिद्ध एव समृद्धिशाली नगरों को धूल में मिला दिया था। ज्वालामुखी पर्वतों से गैस, लपट, धुआँ, भाफ़, मिट्टी, राख, गर्म पत्थर और गली हुई चट्टानों की पतली धाराएँ निकलती हैं। भाफ़ के ज़ोर से कभी कभी पर्वत फट जाते हैं। सन् १८८३ में जावा में एक पर्वत फट गया था। कहा जाता है, केटोपक्षायी नामक ज्वालामुखी ने नौ गज़ मोटी और दस गज़ लंबी एक चट्टान नौ मील की दूरी पर फेंक दी थी।

जब कभी पृथ्वी के भीतर की चट्टानें हिलती डुलती हैं, तब इस हिलने की लहरें चारों ओर व्याप्त हो जाती है। यदि दस मन की चट्टान एक इंच का शतांश भी हटे, तो बड़ा भारी धक्का लगेगा। यदि भूमि के भीतर भूडोल तेज़ नहीं है, तो ऊपर भूडोल बहुत होगा। सन् १९८६ ई० में जो भूचाल आया था, उससे सैकड़ों मकान गिर पड़े थे। पृथ्वी में बहुत स्थानों पर बड़ी बड़ी दरारें पड़ गयी थी और तालाब बन गये थे। सन् १७५५ ई० में जो भूडोल लिसबन नगर में आया था, उसमें क़रीब ४० हज़ार मनुष्यों

के प्राण गये थे। हाल में जापान में जो भूडोल आया था उसमें हज़ारों घर नष्ट हुए और लाख से ऊपर मनुष्यों के प्राण गये। बड़े ज़ोर का भूचाल था। इस भूचाल से कितने ही बसे बसाये द्वीप समुद्रगर्भ में समा गये और कितने ही नये द्वीप जल से बाहर निकल आये।

कहते हैं जब संसार में भारी पाप होते हैं, तभी ऐसे दैवी उपद्रव हुआ करते हैं।

प्रश्न

१—ज्वालामुखी किसे कहते हैं ?
२—भूडोल क्यों होता है ?
३—भूडोल से क्या हानि और लाभ है ?

सातवाँ पाठ

ह्वेल मछली

मुख्य—ख़ास। निवास—रहना। शीत—ठंडा। दीर्घ—बड़ा। नासा-रंध्रों—नाक के छेदों। जलचर—जल में रहने वाला। थलचर पृथ्वी पर रहने वाला।

पानी के रहने वाले जीवों में डीलडौल में सब से बड़ी ह्वेल मछली होती है। यह सत्ताईस गज़ तक लंबी सुनी गयी है। इसका मुख्य निवास-स्थान शीतप्रधान समुद्र हैं। उत्तर और दक्षिण के ध्रुव-प्रान्तों के महासागरों में यह बहुतायत से मिलती है। इसकी हड्डी और चर्बी बहुमूल्य होती

हैं। इस लिये इसका अक्सर शिकार किया जाता है। यह नाम की तो मछली है, पर जल के नीचे यह देर तक नहीं ठहर सकती। साँस लेने के लिये इसे बार बार पानी के ऊपर आना पडता है। इसका साँस लेना भी देखने योग्य होता है। इसके नथुनों के ऊपर दो बड़े बड़े छेद होते हैं। इन्हींके द्वारा यह साँस लेती है। जल के नीचे से ऊपर
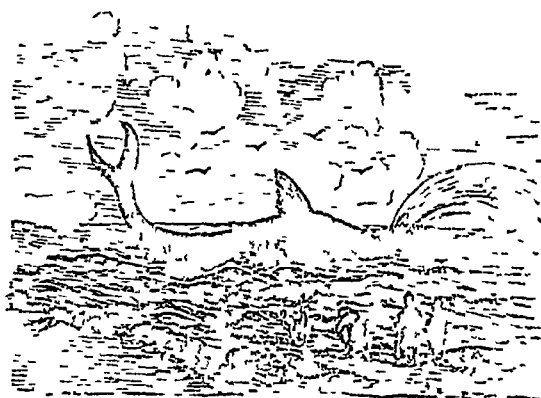
आकर, जब यह अपनी बंद साँस छोड़ती है, तब पहले एक दो मिनट तक ऐसा शब्द होता है, मानो रेल का इञ्जन बड़े ज़ोर से भाफ़ छोड रहा हो। इसके पीछे जल की दो मोटी धारें छिद्रों से निकल कर, बहुत ऊँची उठती हैं। थोड़ी देर जल के नीचे रहने से बहुत जल इसके दीर्घ शरीर में प्रवेश कर जाता है। जब वह सब इन छिद्रों के मार्ग से निकल जाता

है, तभी मानों इसका साँस लेना समाप्त होता है। जिस समय यह अपने दोनों नासा-रन्ध्रों से जल की धारायें छोड़ती और आश्चर्य्यजनक वेग से दौड़ती हुई समुद्र के तल पर चली जाती हो, उस समय यही जान पड़ता है, मानों दो बड़े ऊँचे फव्वारे आपसे आप भागे जाते हैं। उसकी चाल के विषय में कहा जाता है कि, तेज़ से तेज़ डाँक गाड़ी भी उसकी चाल की बराबरी नहीं कर सकती। इसमें इतनी शक्ति है कि, यह केवल अपनी पूँछ हिला कर बड़े बड़े जहाज़ों को उलट कर डुबो सकती है। इसमें एक विशेषता और भी है कि, यह अपने बच्चों को गाय भैंस की भाँति दूध पिलाती है। इससे इसको जलचर और थल-चर दोनों कह सकते हैं।

यह जहाँ समुद्र में उतराती हुई कहीं ठहर जाती है, वहाँ जहाज़वालों को छोटे द्वीप का धोखा हो जाता है। अधिकतर यह शीतप्रधान समुद्र ही में रहती है, परन्तु कभी कभी ठंडी धार में पड़ कर, गर्म देश के सागरों में भी आ पहुँचती है। एक बार सन् १८८२ ई० में लङ्का की राजधानी कोलंबो के बंदर तक एक ह्वेल मछली निकल आयी थी। इसके पश्चात् एक बड़ी ह्वेल २९ मार्च सन् १९१३ ई० को फिर भी इसी बंदर में दिखलायी दी। वहीं इसका फोटो भी लिया गया। लोगों ने इसको रस्सों से बाँधा

और इसके बहुत गोलियाँ भी मारी। पर इस पर कुछ भी असर न हुआ और रस्सों को तोड़ती यह दक्षिण-महासागर में दक्षिण की ओर निकल गयी।

प्रश्न

१—ह्वेल मछली कहाँ पायी जाती है ?
२—यह सांस किस प्रकार लेती है ?
३—यह किस प्रकार का जीव है और क्यों ?
४—इससे जहाज़ वालों को किस बात का धोखा होता है ?

आठवाँ पाठ

विष-वृक्ष

अग्निकोण—पूर्व-दक्षिण का कोना। विपरीत—खिलाफ। जन्तु—जीव। विषैली—जहरीली। उद्भिज—वनस्पति।

हिन्दुस्तान के अग्निकोण में दूर समुद्र में जावा नाम का एक टापू है। इसे लोग यवद्वीप भी कहते हैं। यवद्वीप सुन्दरता की खान है। ऐसा सुन्दर स्थान धरती पर दुर्लभ है। परन्तु एक ही स्थान पर सम्पूर्ण सुख और शोभा का एकत्र होना, प्रायः ईश्वर के नियमों के विपरीत जान पड़ता है। कदाचित् यही कारण है कि, परमेश्वर ने यहाँ एक भयङ्कर वस्तु बना रखी है। यह भयङ्कर वस्तु क्या है ? विष-वृक्ष। यवद्वीप के इस भयङ्कर विष-वृक्ष के कारण, नौ दस मील के घेरे के भीतर और कोई वृक्ष या लता उत्पन्न नहीं हो

सकती है और न रह सकती है। इतनी दूर में यदि जल के भीतर भी कोई जन्तु आ जाता है, तो तुरन्त मर जाता है। इस वृक्ष से दिन रात एक प्रकार का हलाहल विष निकला करता है, जिससे उसके चारों ओर की हवा विषैली हो जाती है। इस वायु में जो पक्षी आ जाते हैं, वे तुरन्त मर जाते हैं।

प्राचीन काल में वहाँ के राजा जब किसी अपराधी को प्राण-दण्ड देते थे, तब वह अपराधी उस पेड़ की पत्तियाँ तोड़ लाने को भेजा जाता था और वह उस पेड़ के समीप पहुँचते ही मर जाता था। कहा जाता है, इस वृक्ष के चारों ओर हड्डियों के ढेर लगे हैं। यह वृक्ष बहुत बड़ा है और देखने में बड़ा सुहावना जान पड़ता है। इसकी ऊँचाई लगभग पचास हाथ है और तने के पास की मोटाई पचीस हाथ से कम नहीं है। तने के ऊपर बहुत सी लंबी लंबी डालियाँ फैली हुई हैं। इसकी छाल का रंग सफ़ेद है। छाल को काटने से एक प्रकार का सफ़ेद रंग का रस निकलता है। यह रस सर्प के विष से अधिक विषैला होता है। एक वैज्ञानिक डाक्टर, बड़े बड़े उपायों के साथ इस वृक्ष के समीप पहुँच सका था। उसने इसके विष को कई जानवरों के शरीर पर लगा उसकी परीक्षा की थी। परीक्षा लेने पर जान पड़ा कि, उस ज़हर से सात मिनट में बंदर,

पन्द्रह मिनट में बिल्ली, एक घंटे में कुत्ता और डेढ़ घंटे में हाथी मर जाते है। प्राचीन काल में वहाँ के राजा लोग इसके विष में बुझा कर तीक्ष्ण वाणों को रखते थे। ये वाण वैरी के शरीरों को छूते ही उनको मृत्युशय्या पर सुला देते थे। अगरेज़ों ने बड़ी बड़ी कठिनाइयों से इस वृक्ष के पत्ते और इसकी छाल लेकर लंडन पहुँचायी थी और वहाँ के बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने उनके गुण अवगुणों पर विचार किया था। डाक्टरों का कथन है कि, अवगुण तो प्रत्यक्ष ही हैं, परन्तु अनेक उत्कट रोगों के दूर करने की भी इसमें शक्ति है। जैसे काँटे से काँटा निकाला जाता है, वैसे ही इसके रस को देने से साँप के काटने का विष दूर हो जाता है और प्राणियों को प्राणदान मिल जाता है।

इंगलैंड देश के फिट नगर में उद्भिज-विद्या विषयक एक उपवन में जाद्रीफ़ा नाम का एक विष का पेड़ लगा था। उपवन के स्वामी स्मिथ साहब की हथेली की पीठ पर एक दिन इस वृक्ष का एक काँटा ज़रा सा छू गया। साहब मूर्छित हो गिर पड़े। डाक्टरों ने तुरन्त ही बड़े बड़े उपाय किये, तब उनका प्राण बचा। घातक वृक्ष जान साहब ने फिर उसे खुदवा कर दूर कर दिया।

प्रश्न

१—विष वृक्ष कहाँ होता है। वहाँ के राजा अपराधी को प्राण दण्ड किस प्रकार देते थे?

२—नीचे लिखे शब्दों का अर्थ लिखो और अपने बनाये वाक्यों में उनका प्रयोग करो।
अग्निकोण, विषैली, घातक, अपराधी, उद्भिज।

नवाँ पाठ

माँसाहारी-वृक्ष

भक्ष्य—खाना। मोहिनी—मोहने वाली। विवश—लाचार। निर्जीव—बेजान। देशाटन—देशभ्रमण।

अमेरिका और अफ़रीका महाद्वीपों में एक जाति का वृक्ष होता है। उसका प्रधान भक्ष्य मक्खियाँ और छोटे छोटे कीड़े हैं। वह बड़ा तो नहीं होता, परन्तु उसमें ऐसी मोहिनी शक्ति होती है कि, उसके पास पहुँचते ही मक्खियाँ और छोटे छोटे कीड़े उसके पत्तों पर गिर पड़ते हैं। गिरते ही पत्ता सिकुड़ कर बंद हो जाता है और अपने रस में लपेट कर उसको हटने में विवश कर देता है। थोड़ी देर में वह कीड़ा अथवा मक्खी गल कर पत्ते में लीन हो जाती है। जीवों के बदले यदि कोई कंकड़ी व अन्य निर्जीव पदार्थ पत्ते पर गिरे तो, पत्ता सिकुड़ कर उसे पकड़ तो तुरन्त लेगा, पर उसे छोड़ भी तुरन्त ही देगा।

इसी जाति का एक और पेड़ होता है, जो मक्खी आदि को पकड़ कर मार तो डालता है, पर उन्हें खाता

नहीं । इसके पत्ते देखने में फूल के समान होते हैं । पत्तों के किनारे नुकीले और छोटे छोटे काँटों से भरे रहते है । पत्तों को फूल जान कर भौंरा या मक्खी ज्यों ही उन पर पैठी, त्यों ही वे सिकुड कर उन्हें काँटों से छेद देते हैं और ये छोटे जीव शक्तिहीन हो मर जाते हैं ।

देशाटन करने वाला डरियल नाम का एक साहब, अफ्रीका के एक वन में शिकार खेलने गया । उसने एक हिरन पर गोली छोड़ी । हिरन भागा, साहब ने एक काफी लडके को उस हिरन के पीछे दौड़ाया । कुछ दूर लडका गया भी, पर सहमा वह जोर से रोने लगा । उसका रोना सुन साहब दौड कर उस ओर गये, जिस ओर से लडके के रोने का शब्द आ रहा था । वहाँ जाकर साहब ने देखा कि, एक बड़ा वृक्ष है, जिसकी डालियाँ बड़े ज़ोर से हिल रही है । साहब ने अनुमान से जान लिया कि, लडका उस पेड़ के नीचे दबा पड़ा है । उसको देखने के लिये साहब ज्यों ही उसकी ओर बढ़ने लगे, त्योंही उन्होंने देखा कि, डालियाँ हिलहिल कर मानों उनको भी पकड़ना चाहती हैं । यह देख कर साहब पीछे हटे और बदूक भर भर कर वे उन पत्तों पर छोड़ने लगे । तब तो वृक्ष और अधिक वेग से हिलने लगा । फिर डरियल साहब ने छुरे से उस पेड ही को

नष्ट कर डाला और नष्ट करने पर साहब ने देखा कि, वृक्ष ने अपनी डालियों से उस लड़के और हिरन को ऐसा जकड़ रक्खा था कि, उनका उससे छूटना असम्भव था।

प्रश्न

१—मांसाहारी वृक्ष पर यदि कोई निर्जीव पदार्थ फेंका जाता है, तो क्या होता है।

२—लड़का क्यों रोने लगा?

३—डरियल साहब ने क्या देखा?

४—महाद्वीपों, देशाटन, जकड़, जीव—इन शब्दों को अपने बनाये हुए वाक्यों में प्रयोग करो?

पाठ बारहवाँ

धान

शिशिरऋतु—माघ और फागुन को शिशिर ऋतु कहते हैं। ग्रीष्म—गर्मी। पर्याप्त—पूर्ण, काफी। निर्विघ्न—बिना रोक।

धान हमारे देश के अन्नों में से एक प्रसिद्ध अन्न है। यह अनेक प्रकार का होता है। परन्तु जितने प्रकार का होता है, वे सभी उसके जेठी, कुआरी और अगहनी इन तीन ही भेदों के भीतर हैं।

१—जेठी—यह शिशिर ऋतु में बोया जाता है। जब पौधे ६ से ८ इंच की ऊँचाई के हो जाते हैं, तब उन्हें उखाड़ कर, नदियों या तालावों के किनारों पर, जहाँ सरलता से

सींचने भर को पानी मिल सकता है, लगाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में यह पक कर तैयार होता है। कहीं कहीं कुछ पिछड कर इसका बीज ही बिखरा देते हैं, पौधे नहीं लगाते। दोनों ही जेठ के महीने में पक कर तैयार हो जाते हैं।
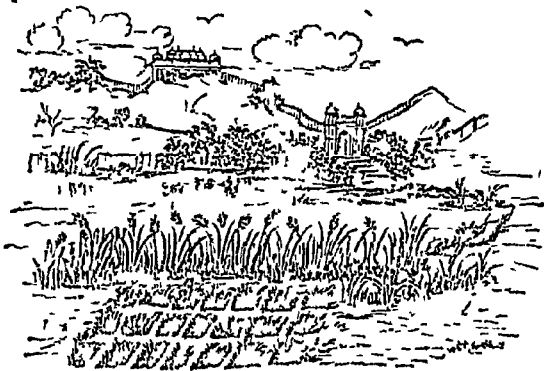
२—कुआरी—यह धान ज्येष्ठ और आषाढ़ के महीनों में बोया जाता है। पौधे भी लगाये जाते हैं। दोनों ही पक कर भाद्र और अधिक से अधिक आश्विन तक तैयार हो जाते है।

३—अगहनी व जडहन—यह आषाढ़, श्रावण में छोटी छोटी क्यारियों में बोया जाता है, जब यह एक फुट के लगभग हो जाता है और कोमल रहता है तब इसके पौधे

उखाड़ कर, बने हुए तैयार खेतों में लगा दिये जाते हैं। जब पौधे बड़े हो जाते हैं, तब नहीं लगाये जाते। क्योंकि फिर अच्छी उपज नहीं होती। इसके बहुत भेद होते हैं। जेठी और कुआरी के चावलों से यह चावल स्वाद और उत्तमता में अधिक होता है। यह कठोर चिकनी मिट्टी में उपजता है। रेतीली मिट्टी में यह नहीं लग सकता।

पहले जिस क्यारी में यह बोया जाता है, उसे कई बार जोतते हैं और उसमें खाद देते हैं। फिर पानी भर कर उसे पहटे से बराबर करते हैं और मिट्टी को पतले गारा के समान कर देते हैं, जिसमें उखाड़ते समय वे हलकी मिट्टी से उखड़ आवें और जड़ें न टूटें। पहले दिन इसका बीज रात के समय पानी में भिगो दिया जाता है। दूसरे दिन क्यारी बना कर बीज बिखराया जाता है। यह घना तो बोया जाता है, पर इतना ही, जिसमें पौधे आराम के साथ बढ़ सकें। इन क्यारियों में दूब या और घास के पौधे नहीं रहने पाते। खाद और पानी का प्रबन्ध होता ही रहता है। एक बिस्वे की क्यारी के पौधे दस बिस्वे खेत को पर्याप्त होते हैं। पौधे घने नहीं लगाये जाते क्योंकि घने होने से शाखायें नहीं फूट सकतीं। तब उपज में कमी पड़ जाती है। इसमें पौधे लगाने से कटने तक पानी की आवश्यकता रहती है। इससे इसकी चारों मेड़ें सदा बँधी रहती हैं,

जिससे पानी न निकल सके। जहाँ कुआर के पीछे भी पानी रहता है या पहुँचाया जा सकता है; वहाँ ही जड़हन लगाया जाता है। यदि इसकी खेती के लिये पूरी सुविधा मिल सके और फसल निर्विघ्न समाप्त हो, तो प्रायः और अनाजों से इसकी उपज अधिक होती है।

प्रश्न

१—जड़हन धान किस प्रकार बोया जाता है?
२—धान के कितने भेद हैं?
३—जेठी धान कब बोया जाता है

पाठ तेरहवाँ

वाणी

वाणी—बोली। स्वाध्याय—पठनपाठन। सत्कर्मों—भले कर्मों। शब्दसागर—शब्द का समूह। भीरु—डरपोक। आकर्षित—खींच। कटु—कडुवा। विसर्जन—त्याग।

मनुष्यों में मनुष्यता की पहिचान उनकी वाणी से होती है। पशु पक्षियों से मनुष्य इसी कारण श्रेष्ठ माना जाता है। मनुष्य के सब व्यवहारों की जड़ यही है। ज्ञान-साधन का कारण भी यही है। विद्या, यज्ञ, स्वाध्याय आदि सभी सत्कर्मों का साधन वाणी ही है।

इसकी किरणें अथाह शब्दसागर को प्रकाशित करती है। बुद्धि को प्रकाशित करने वाली यही है। इसमें

कोई सन्देह नहीं कि, वाणी निर्वल को सवल, भीरु को शूर और निर्धन को धनी वनाती है। वाणी ही पापी को पापों से हटा कर, उसे पुण्य में लगाती है। यही ससार को अपनी ओर आकर्षित कर, मित्र वनाती है और मैत्री के आनन्द का अनुभव कराती है। जैसे चलनी से सत्तू का चोकर और सूप से चावल की भूसी अलग करते हैं, वैसे ही मन के द्वारा सत्य से असत्य को, प्रिय से अप्रिय को, मधुरवचन से कटुवचन को, हित से अहित को और प्रेम से विरोध युक्त वाक्य को अलग कर, शोधित वाणी का प्रयोग करना चाहिये। वाणी का प्रथम धर्म सत्य वोलना है। सत्य का वर्णन सव धर्मों में है और सभी उसे उत्तम मानते हैं। सत्य सव के कल्याण का मूल है।

सत्य का स्वरूप यही है कि, जिस वात को जैसा देखा हो व सुना हो अथवा जैसा मन के भीतर विचारा हो, वैसा ही वाणी द्वारा प्रकाशित कर दिया जावे। किसी लोभ आदि के कारण, सत्य वात का अन्य प्रकार से कहना व प्रगट करना झूँठ और महापाप है। सत्य वोलने वाले का हृदय सदा प्रफुल्लित रहता है। इसी सत्य के पीछे महाराज दशरथ ने अपने प्राण से भी अधिक प्यारे राजकुमारों को वन में भेजा और स्वर्ग के राज्य से भी

अधिक सुखदायी अयोध्या राज्य के सुख को छोड़ कर अपने प्राण विसर्जन कर दिये। महाराज हरिश्चन्द्र ने इसीके हेतु कितने ही कष्ट सहे। भीष्म पितामह ने सत्य की रक्षा के लिये आजन्म ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण किया।

अतएव बालको सत्य, कोमल और मधुरता से साने वचन बोल कर, अपनी वाणी का सन्मान करो, जिससे लोक में कीर्त्ति और परलोक में भी सुख मिले और मनुष्य जन्म सफल हो।

प्रश्न

१—वचन कैसा बोलना चाहिये और क्यों ?

२—महाराज दशरथ ने प्राण क्यो छोड़े ?

३—सत्य का स्वरूप क्या है ?

पाठ चौदहवाँ

चीन की दीवाल

निर्माण—बनाना। आभूषण—गहना। आविष्कार कर्त्ता—खोज करने वाले। निर्माता—बनाने वाला। प्रतिभा—बुद्धि। क्षमताशाली—पराक्रमी। अधःपात—पतन, नाश। हस्तगत—अधिकार। साक्षी—गवाही।

चीन अति प्राचीन और अति प्रसिद्ध एक देश है। चीन देश पुराने समय से अपने कलाकौशल के लिये प्रसिद्ध है। चीन ही के निवासियों ने सब से प्रथम बंदूक और बारूद

तैयार की थी। अब तो पश्चिम देश वालों ने युद्ध के सामान की बड़ी उन्नति कर ली है; परन्तु सब से प्रथम इन दोनो वस्तुओं को चीनवालों ही से इन लोगों ने निर्माण करना सीखा था। जिस दियासलाई के बिना आजकल लोगों का एक क्षण भी निर्वाह नहीं होता, उसको भी पहले

चीनियों ही ने बनाया था। जो रेशमी वस्त्र आजकल सभ्य समाज में आभूषण के समान समझा जा रहा है, वह सब से पहले चीन ही में तैयार किया गया था। संस्कृत-भाषा के शब्द निर्माताओं ने इसीलिये रेशमी कपड़े का नाम "चीनांशुक" रख लिया था। इनके अतिरिक्त चीनी और भी अनेक

उपयोगी वस्तुओं के आविष्कारकर्ता एवं निर्माता है। चीनियों में नये नये आविष्कार करने की विचित्र प्रतिभा है, किन्तु यदि उनमें कोई दोष है तो यही है कि, वे अपने मन में समझे बैठे हैं कि, चीन से बढ़ कर सभ्य और क्षमताशाली राज्य इस संसार में दूसरा नहीं है। उनका यही अभिमान उनके अधःपात का कारण है।

चीनी अपने देश को "चकूयो" कहा करते हैं। चीन को मुग़ल "काथे"। तातारी "निकान-कूयान" जापानी "श," और श्याम तथा आसाम वाले उसे "शीन," कह कर पुकारते हैं। भारतवासियों ने शीन का चीन कर लिया और यहाँ की देखा देखी योरुप वालों ने उसका नाम "चायना" धर लिया।

चीन का राज्य बहुत लंबा चौड़ा है। चीन देश भारतवर्ष से कई गुना अधिक है। तिस पर उसमें तिब्बत और चीनी तातार भी सम्मिलित हैं। कहा जाता है कि, चीन का साम्राज्य ईसा के जन्म के २८५० वर्ष पहले "कोहिटियेच्चि" नाम के एक चीनी ने स्थापित किया था और चीन का वही पहला सम्राट् था। उसके पीछे "सिन्न आदि सात सम्राटों ने राज्य किया। फिर "हाया" वंश के राज्य-वंश के हाथ में वहाँ का साम्राज्य गया; इस वंश के ३२ सम्राट् चीन की गद्दी पर बैठे।

फिर " सा " वंश के लोग सम्राट् हुए। ईसा से ११२२ वर्ष पहले इस वंश के २८ सम्राटों के राज्य कर चुकने पर, " चिउ " नाम के वंश वालों के हाथ में राज्य गया। ईसा के २५५ वर्ष पहले इस वंश के ३५ राजा वहाँ की राजगद्दी पर बैठे। उसके पश्चात् " छिन " वंश वालों ने चीन का राज्य अपने हस्तगत किया।

इसी वंश में एक बड़ा नामी सम्राट् हुआ है। उसका नाम " चिङ्ग " था। उसने ईसा के २४६ वर्षों पहले राज्य करना आरम्भ किया था। उसने चीन के सारे छोटे बड़े राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया था और सारे राज्य को ३६ भागों में विभाजित किया था। चीन के उत्तरीय प्रान्त में रहने वाले लोग कभी कभी बड़े बड़े उपद्रव किया करते थे। उनके उपद्रवों के मारे प्रजा के धन, प्राण और मान की रक्षा करना बड़ा कठिन हो गया। यह देख कर, सम्राट् ने उन लोगों पर चढ़ाई की और उन तातारियों को मार कर वहाँ से भगा दिया। वे लोग फिर देश में न घुस सकें—यह सोच कर, उसने विश्वविदित " चीन की दीवाल " बनवायी। उसको बने २१०० वर्ष से अधिक हो चुके, तो भी वह पर्वत की तरह अचल तथा अटल खड़ी हुई मनुष्यों के असाधारण परिश्रम की साक्षी दे रही है।

यह दीवाल सांहाई ऊई स्थान से आरम्भ होती है। उस स्थान पर एक फाटक है। उसका नाम सांहाई गेट है। पहले यहाँ तक समुद्र था। जहाज़ में बैठ कर, जैसलिन साह ने इस दीवाल को देख कर, इसका हाल लिखा था। यह दीवाल, पर्वतमाला की तरह बहुत दूर तक, समुद्र के किनारे किनारे चली गयी है और जा कर एक पहाड़ के पास रुक गयी है। वहाँ से फिर यह पश्चिम की ओर और पिलाई नामक स्थान से उत्तर की ओर मुड़ी है। अना में पिली नदी के तट पर पहुँच कर, यह ठहर गयी है। वहाँ से फिर यह पश्चिम को मुड़ी है और किचाऊ किमाप् नामक स्थान पर पहुँच कर, समाप्त हो गयी है।

यह दीवाल १२५० मील लबी है। जिस जिस देश में होकर यह दीवाल गयी है उसी उसी देश के मसाले से यह बनायी गयी है। कहीं पर दाय पत्थर और मिट्टी से और कहीं पर मिट्टी और ईटों से यह बनायी गयी है। नींव इसकी २५ फ़ीट गहरी और १५ फ़ीट चौड़ी है। इसकी ऊँचाई पन्द्रह फ़ीट से ३० फ़ीट तक है। दीवाल के ऊपर कहीं कहीं ईंट के बने बुर्ज़ भी हैं। उनमें से कोई कोई तो चालीस फ़ीट ऊँचे हैं। ये बुर्ज़ दीवाल के ऊपर नहीं बनाये गये। नीचे उनका आसार चौखूँटा चालीस फ़ीट रखा गया है और उनका ऊपरी

भाग ३० फ़ुट है। कोई कोई बुर्ज़ दुतल्ले और ५० फ़ीट ऊँचे हैं। इस दीवाल के बन जाने के पश्चात् चीन में तातारी डाकुओं के उपद्रव बंद हो गये थे।

प्रश्न

१—चीन की दीवाल किसने बनवायी और क्यों ?
२—चीन राज्य को किसने स्थापित किया ?
३—रेशम का चीनांशुक नाम क्यों पड़ा ?
४—सब से पहले वारूद, दियासलाई किसने बनायी ?
५—दियासलाई बनाना यूरोपवालों ने किससे सीखा ?

पंद्रहवाँ पाठ

खाद

वनस्पति—वृक्षादि। खाद्य—खाने योग्य। पदार्थों—वस्तुओं। अपेक्षित—आवश्यक। परमावश्यक—बहुत ज़रूरी। उपयोगी—लाभदायक। प्रदर्शित—प्रत्यक्ष कर।

जैसे पशु, पक्षी, मनुष्य आदि को भोजन की आवश्यकता है, वैसे ही वनस्पतियों को भी खाद्य पदार्थों की आवश्यकता रहती है। भूमि में वनस्पतियों के खाद्य पदार्थ तो अवश्य हैं, परन्तु इतने ही हैं, जितने अपने से आप उत्पन्न हुई वनस्पतियों के लिये अपेक्षित हैं। इसलिये केवल जोत जोत कर, नहीं; वरन भाँति भाँति के

खाद्य डाल कर भूमि की शक्ति बढ़ायी जाती है। पहले पौधों के उगने से भूमि निर्बल पड़ जाती है। उस निर्बलता को दूर करने और अधिक शक्ति बढ़ा कर, उसको उपजाऊ बनाने के लिये खाद का डालना परमावश्यक है, जिससे उपजने वाले पौधों का भोजन पृथ्वी में तैयार रहे और पौधे खा कर बढ़ें, फूलें, फलें और लोगों को लाभ हो। खाद के दो भेद हैं। १ साधारण और २ विशेष।

१—साधारण खाद स्वाभाविक और उपयोगी खाद है, जिसमें सभी पौधों के सभी खाद्य पदार्थ अधिकता से रहते हैं। वे खाद ये हैं—गोबर, पौधों की पत्तियाँ और मैला इत्यादि। साधारण खाद पशुओं और वनस्पतियों द्वारा प्राप्त होती है। यद्यपि साधारण खादों का लाभ विलम्ब में जान पड़ता है, तथापि बहुत समय तक रहता भी है और प्रत्येक पौधे के काम आता है। क्योंकि सब पौधों के पूरे पूरे भोजन उसके द्वारा पृथ्वी में पहुँच जाते हैं।

२—विशेष खाद वे खाद हैं, जिनका प्रभाव तो तुरन्त जान पड़ता है, परन्तु वह प्रभाव थोड़े ही समय बाद समाप्त भी हो जाता है। विशेष खाद सब प्रकार की भूमि तथा सब पौधों के लिये उपयोगी भी नहीं होती। विशेष खाद चूना भी है जो चिकनी मिट्टी में फलीदार वृक्ष, उर्द, मटर आदि को लाभ पहुँचा सकती है।

पाँस चाहे पशुओं की हो चाहे वनस्पतियों की, अच्छी वही समझी जाती है, जो भली भाँति सड़ कर कोमल हो गयी हो और जिसकी दुर्गन्ध भी दूर हो चुकी हो तथा भारी होकर काले आदि अपने रंग पर आ गयी हो एवं उसके सब गुण अर्थात् नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश और चूना उसमें भरे हों।

खाद बनाने के पदार्थ ये हैं—गोबर, मैला, हड्डी, भेड़ बकरी की मेंगनी, पशुओं का मूत्र, ऊन, ख़ून, खली, गंदे नालों का पानी, हरे पौधे, पत्ते, शोरा, चूना, लोना, तालाब की मिट्टी, चिड़ियों की बीट इत्यादि। संसार में जितने ऐसे मलिन पदार्थ हैं, पृथ्वी उनको सड़ा गला कर पौधों के रूप में प्रदर्शित कर स्वच्छ और पवित्र हो सब को सुख देती है।

प्रश्न

१—पास डालने से क्या लाभ है ?
२—खाद किन किन पदार्थों से बनती है ?

सोलहवाँ पाठ

मूँग फली

शताब्दी—ईस्वी। प्रमाण—सबूत। अपेक्षा—ज़रूरत। पर्याप्त पूरा। निर्विघ्न—बेरोक।

हिन्दुस्तान में मूँगफली के, चीना-बादाम, विलायती मूँग आदि कई नाम है। अँगरेज़ी में इसको ग्रौंडनट व पीनट कहते है। इस पौधे का जन्मस्थान दक्षिणी अमेरिका है। कुछ लोग कहते है कि, यह पौधा अफ्रीका का है, परन्तु अठारहवी शताब्दी के पहले वहाँ इसके होने का कोई प्रमाण नही है। भारत में इसका बीज लगभग नब्बे वर्ष के होते होंगे चीन से आया था, इसीसे इसको चीना बादाम कहते हैं।

यह पौधा ग्रीष्मप्रधान देशों में अधिक फूलता फलता है। इसी कारण से भारतवर्ष में इसकी उपज बहुत होने लगी है। यह रेतीली और हलकी मिट्टी में होती है। बहुत खाद की भी यह अपेक्षा नही रखती। एक ही खेत मे लगातार कई वर्षों तक इसे न बोना चाहिये, नहीं तो यह कम और छोटी होने लगती है। अधिक पानी से यह दब जाती है। दो या तीन बार खेत जोत कर इसके लिये अच्छा पोल बना लेना चाहिये। बीज अच्छे बोना चाहिये; जिसमें कीड़े न लगे हों। फली बो देने से तो उगने में देर लगती है, पर बीज नष्ट होने का डर नही रहता। क्योंकि बीज बोने में यह सावधानी रखनी पड़ती है कि, फली का छिलका निकालते समय, कहीं बीज का छिलका न निकल जावे, नहीं तो पौधा नहीं उगता।

इसके बोने का समय नियत नहीं है। जिन महीनों में अधिक पानी बरसता है जैसे सावन भादों, उन्हीं महीनों में इसे न बोना चाहिये। ज्येष्ठ, आषाढ़ की बोई फ़सल अगहन पूस में तैयार हो जाती है और जो आश्विन कार्तिक में बोई जाती है, वह फाल्गुण व चैत्र में तैयार हो जाती है।

छिलके सहित बीज कुड़ में ६ इंच से लेकर ९ इंच की दूरी तक बोये जाते हैं। बीच बीच में खेत की शक्ति के अनुसार एक या दो कुड़ खाली छोड़ दिये जाते हैं। इसे छिटवाँ भी बोते हैं, परन्तु जहाँ पौधे घने हो जावें, वहाँ से उन्हें उखड़वा देना चाहिये। इसके छोटे छोटे पौधों की रखवाली करनी पड़ती है ; नहीं तो मीठे होने के कारण गिलहरी और कौवे आदि खा लेते हैं। इसके साथ में साँवा और काकुन हो सकते हैं। क्योंकि इसके फैलने तक ये तैयार हो जाते हैं, फिर इनको काट कर खेत निरवा दिया जाता है।

मूँगफली का पौधा मटर के पौधे के समान होता है। पर इसे दूर बोते हैं जिसमें उगने के पीछे यह भूमि पर फैलने लगे। इसका फूल मटर जैसा होता है, पर उसकी रंगत में पीलापन रहता है। जब फूल मुरझा जाता है; तब इसकी नोंक झुक कर पृथ्वी में धस जाती है और दो तीन

इंच जाने पर इनमें फलियाँ लगने लगती हैं। इस समय यदि वर्षा बंद हो जाती है, तो सिंचाई की भी आवश्यकता पड़ती है। नहीं तो गोड़ कर मिट्टी चढ़ाना ही पर्याप्त हो जाता है। जब पौधे पीले पड़ जावें ; तब जान लेना चाहिये कि मूँगफली पक गयी। तब इसको खुदवा लेना चाहिये ; परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि, कच्ची कभी न खोदी जावे, नहीं तो शुष्क हो जाने पर बड़ी हानि होती है।

मूँगफली के शत्रु कौवे, चूहे गिलहरी, शृगाल तथा दीमक आदि छोटे छोटे कीड़े हैं। बहुत से इसकी जड़ काट देते हैं, बहुतेरे पत्ते ही चाट जाते हैं। ताज़ा गोबर आदि इसके खेत में कभी न पड़ने देना चाहिये; नहीं तो दीमकों का बड़ा भय हो जाता है। निर्विघ्न फसल तैयार होने पर मूँगफली पच्चीस मन फी बीघा बैठती है।—

यह भोजन का पदार्थ है और स्वाद में मेवा के समान है। यह पुष्ट और स्वादिष्ट होता है। इसका तेल भी निकालते हैं। वह भी खाने, मालिश करने, साबुन आदि बनाने के काम में आता है। मूँगफली का तेल वायु नाशक और चर्मरोग को दूर करने वाला होता है। खली जानवरों को खिलाने से उनको लाभ पहुँचाती है और खाद का भी काम देती है।

प्रश्न

१—मूंगफली के कितने नाम हैं ?
२—यह हिन्दुस्तान में कहाँ से आयी ?
३—यह कब बोयी जाती है ?
४—इसके शत्रु कौन हैं ?
५—यह किस काम में आती है ?

सत्रहवाँ पाठ

गोस्वामी तुलसीदास जी

अगाध—अथाह। अस्थि—हड्डी। चर्म—चमड़ा। मम—मेरा। भवभीति—सांसारिक दुःख। मुद्रा—सिक्का। कुशल—चतुर।

गोसाईं तुलसीदास का जन्म राजापुर, तहसील, परगना मऊ, जिला बाँदा में संवत् १५८९ में हुआ था। जी० आई० पी० रेलवे-स्टेशन करवी से चित्रकूट चार मील दक्षिण है और इसी करवी स्टेशन से उत्तर १९ मील की दूरी पर, श्रीयमुना के तट पर राजापुर बसा है।

तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दुवे और माता का नाम हुलसी था। इनका बालकपन का नाम रामबोला था, किन्तु वैरागी होने पर इनका नाम तुलसीदास पड़ा। इनका जन्म अभुक्त मूल में हुआ था। जब ये छोटे ही थे; तभी इनके माता और पिता स्वर्ग पधारे
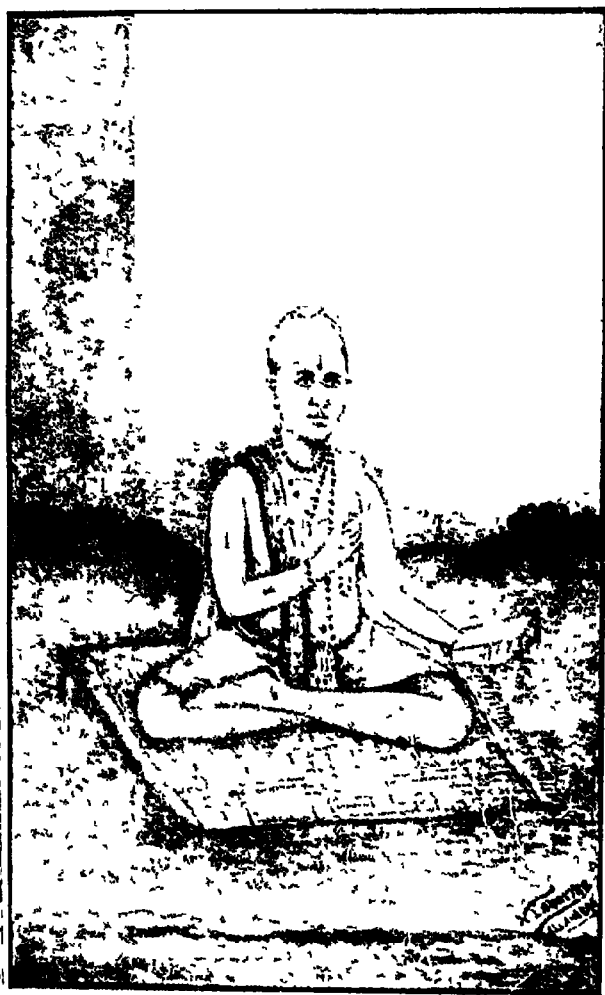
थे। उस समय पालन पोषण करने वाले के अभाव से इनको वहुत कष्ट सहन करना पड़ा।

कहने हैं, इनका विवाह दीनवन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। इससे इनके तारक नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु थोड़े ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी थी। लोग यह भी कहते है कि, गोस्वामी जी अपनी स्त्री रत्नावली पर वड़ा प्रेम करने थे। एक वार रत्नावली जब पिता के घर थीं, तब ये भी अचानक वहाँ जा पहुँचे। इस पर इनकी स्त्री ने झुंझला कर अपनी सम्मति प्रकट करने के लिये यह कहा था:—

दो०—अस्थि चर्म मय देह मम, तासो जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तो भवभीति॥

अर्थात् आपका जैसा प्रेम मेरे इस हाड़ चाम के वने शरीर के ऊपर है, वैसा यदि कहीं श्रीराम में होता, तो आपको ससार से कुछ भी भय न रहता।

प्रेमी का हृदय कोमल होता है। अतः इस धिक्कार पूर्ण उपदेश से तुलसीदास जी लज्जित हुए और तपाये हुए सोने के समान सांचे प्रेम में ढल कर टकसाली मुद्रा हो गये।

गोस्वामी जी उलटे पॉव उस स्थान से लौट श्रीस्वामी रामानन्द जी के शिष्य, नरहरिदास जी के पास जा कर,

उनके शिष्य हो गये। नरहरिदास जी यमुना जी के किनारे रहते थे। शाहपुर में नरहरिदास की माफ़ी के नाम से अब भी कुछ भूमि अंगरेज़ सरकार के हाथ में है। राजापुर यमुना के दाहिने किनारे पर है, वहाँ से दो मील की दूरी पर बायें किनारे शाहपुर बसा है।

तुलसीदास जी की भी माफ़ी राजापुर में है। दिल्लीश्वर अकबर ने इनकी सिद्धता की परीक्षा करके इन्हें यह दी थी। अंग्रेज़ सरकार ने यह माफी नहीं रक्खी, परन्तु कुछ निश्चित द्रव्य उनके शिष्यों के वंशजों को मिलता है।

तुलसीदास जी भारतवर्ष के सभी तीर्थों में भ्रमण करते थे, परन्तु उनका मुख्य वासस्थान असी और गंगा के सगम के पास काशी में था। यहाँ रह कर ये सदा वाल्मीकि रामायण का पाठ करते थे। इसके पहले सोरों में रह कर, इन्होंने अपने गुरु से रामायण की कथा सुनी थी; किन्तु काशी विद्यापीठ में रहने और विद्वानों की सगति से इनमें सस्कृत और प्राकृत में पद्यरचना की विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो गयी थी।

इनकी भक्ति और साधुता की प्रसिद्धि जनसमूह से छिपी नहीं है। इन्होंने रामचरितमानस, विनय पत्रिका, राम-गीतावली, दोहावली, कवित्त रामायण,

बरवारामायण, छन्दावली, सतसई आदि कई ग्रन्थों को रचा है। भारतवर्ष की हिन्दूजनता में मूर्ख से लेकर अच्छे विद्वानों तक इनकी रामायण का आदर तो है ही ; किन्तु इनके विचारों से लाभ उठाने में अन्य देश वाले और अन्य भाषा वाले भी नहीं चूके। सब ने रामायण के अनुवाद से भक्तिरस पान किया। हिन्दुओं की पुस्तकों की दूकानें और घर ऐसे विरले ही होंगे, जिनमें इनकी रामायण न विराजती हो। इसमें सन्देह नहीं कि, यह ईश्वर के विशेष-कृपा पात्र थे। महात्मा तुलसीदास जी की पुस्तकों से विदित होता है कि, यह धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि सब विषयों में परम कुशल थे। आज कल जितनी सभायें और उपदेशक देश और समाज को लाभ पहुँचा रहे हैं, तुलसीदास जी मानों तब से अब तक बराबर सब के आगे दौड़ कर उनका कार्य्य कर रहे हैं। यदि तुलसीदास जी अपने नाम से कोई मत खड़ा करना चाहते, तो उनका चलाया मत अनेक मतों के आगे रहता। पिता पुत्र, भाई भाई, स्त्री पुरुष, स्वामी सेवक इत्यादि का परस्पर व्यवहार कैसा होना चाहिये, यह इनके रचे हुए अयोध्याकाण्ड ही से विदित हो जाता है।

राजापुर में इनके पूजन की संकटमोचन हनुमान जी की एक मूर्ति है। इनके हाथ की लिखी रामायण का

अयोध्याकाण्ड राजापुर में अब तक है, जिसका लोग दर्शन करते हैं, तुलसीदास जी का एक मन्दिर भी है, जिसमें राममन्दिर के पास इनकी भी एक पुरानी मूर्त्ति है। राजापुर में कुछ सज्जनों के उद्योग से एक संस्कृत पाठ-शाला भी इनके स्मारक में खोल दी गयी है।

प्रश्न

१—तुलसीदास जी ने कौन कौन से ग्रन्थ बनाये हैं ?
२—इनके माता पिता का नाम क्या था ?
३—ये विरक्त कैसे हुए ?

अठारहवाँ पाठ

धनवान बनने के उपाय

साधन—उपाय। सञ्चित—एकत्रित। मितव्ययी—कम खर्च। उपार्जन—पैदा। व्यसन—बुरी आदतें।

बालको! ऐसा कौन है, जिसे धन की इच्छा न हो? गृहस्थी में रह कर सभी का विना थोड़े या बहुत धन के काम नहीं चलता। किन्तु विद्याधन सब धनों में श्रेष्ठ है और अन्य धनों का साधन भी है। विद्या ही के द्वारा तुम यह जान सकोगे कि, दूर देश अमेरिका आदि के निवासी किन किन उपायों से सदा दीन दशा से निकल

कर करोड़पती बने हैं। इन बातों का सारांश संक्षेप में जान लो और उसी पर चलने का यत्न करो।

१ सत्य और धर्म पर निर्भर रह कर धन सञ्चित करना, २ लोगों का विश्वासपात्र बनना, ३ प्रातःकाल उठने का अभ्यास, ४ थोड़ा समय खेलकूद में लगा कर लगातार परिश्रम करना, ५ ऋण से सदा दूर रहना। ये उपाय सब उपायों से बढ़कर हैं। ६ उद्देश्य सिद्धि के लिये दृढ़ सङ्कल्प करना, ७ मितव्ययी बनना, ८ धन उपार्जन करने की अपेक्षा उसके बचाने की ओर अधिक ध्यान देना। यह उपाय भी बड़े गौरव के हैं, ९ चित्त को एकाग्र रखना, ९ उत्तरदायित्व का भार समझना। १० प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक कार्य से धन प्राप्त करने की खोज पर ध्यान रखना, ११ अपनी वर्तमान आय पर सन्तुष्ट न होकर अधिक से अधिक आय बढ़ाने का उद्योग करते रहना, १२ असफलता से लडने के लिये सदा तैयार रहना, १३ दुर्व्यसनों से बचना, १४ अपनी पूंजी को लाभदायी कामों में लगाना, गाड़कर न रखना। १५ एक समय में अनेक प्रकार के कारोबार करके चित्त को व्यग्र न करना, एक ही कार्य्य करना। "एकहि साधे सब सधे सब साधै सब जाँय। जो गहि सींचहि मूल को फूले फले अघॉय।" १६ जिस कार्य में चित्त न लगे उसे, न करना,

१७ विश्वासघातियों से सावधान रहना, १८ लड़ाई झगड़े और अदालत से सदा दूर रहना ।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखने से मनुष्य अवश्य धन के सुख का भागी हो सकता है । उपाय से संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । बिना उद्योग किये फल की इच्छा रखना भारी भूल है । पहले खेत बनाओ, बोओ, तब काटने की इच्छा करो । क्षण क्षण के पढ़ने से अनपढ़, विद्वान् हो जाते हैं । थोड़ा थोड़ा व्यायाम करते रहने से दुर्बल पुष्ट हो जाते हैं । ऐसे ही कण कण संग्रह करने से धन का भी ढेर हो जाता है । तुमने बरसात में तालाबों, नालों और नदियों का उमड़ना देखा है? यह सारी लीला छोटी छोटी बूंदों ही की तो है । ऐसे ही थोड़े थोड़े संग्रह और रक्षा से धन भी परिपूर्ण हो कर उमड़ने लगता है ।

प्रश्न

१—धनवान बनने के कौन कौन से साधन हैं?

२—मितव्ययी, उपार्जन, संचित, साधन—इनके अर्थ लिखो और अपने बनाये वाक्यों में प्रयोग करो?

उन्नीसवाँ पाठ

अंडमन द्वीप के रहने वाले

अशिक्षित—अनपढ़ । वल्कल—छाल । दारुण—भयङ्कर । चिकित्सा—दवा । जीर्ण—पुराना, बुड्ढा ।

भारतवर्ष के दक्षिण-पूर्व बंगाल की खाड़ी में अंडमन द्वीपसमूह है । यह द्वीपसमूह वनों से भरा है । वहाँ के रहने वाले अशिक्षित और जगली हैं, इसीसे सभ्य समाज इतने दिनों तक इनके विषय में कुछ न जान सका था ।

आजन्म देश निकाले का दण्ड पाये अपराधी इसी द्वीप-समूह के एक द्वीप पोर्टब्लेयर में भेजे जाते हैं। इसीसे उन द्वीपों का वृत्तान्त लोगों को अब मिल सका है। पोर्टब्लेयर का प्रसिद्ध नाम कालापानी है। लोग अंडमन निवासियों को अंडमनी कहते हैं, इनका बाहरी आकार डरावना और बेढंगा होता है। वे लोग इनको नरमांसभक्षी राक्षस जानते थे, इसीसे जहाज़ी मल्लाह भी इस स्थान को बचा कर निकलते थे।

परन्तु अंडमनी ऐसे खूंखार नहीं हैं, यह बात अब भली भाँति सिद्ध हो चुकी है। ये ताड़ के पत्तों की छोटी छोटी झोपड़ियाँ बना कर रहते हैं, जिनके आसपास इनके खाये हुए पशु पक्षियों और मछलियों की हड्डियों के ढेर लगे रहते हैं। जब यह ढेर सड़ने लगते हैं और इनकी दुर्गन्ध बहुत बढ़ जाती है और ये लोग उसे नहीं सह सकते, तब उस स्थान को छोड़ दूसरे स्थान पर जाकर झोपड़ियाँ डाल कर रहने लगते हैं।

इन लोगों का डीलडौल नाटा होता है और ये लोग अक्सर नंगे रहा करते हैं। कभी कभी ये वृक्षों के वल्कलों से सिर, गर्दन और कमर ढाँक लिया करते हैं। ये लोग स्वयं नंगे रहते हैं। अतः दूसरों को वस्त्र पहने देख, उनसे घृणा करते हैं और उनकी बहुत हँसी उड़ाते हैं। परन्तु इनकी स्त्रियाँ

नगी नहीं रहतीं। उनका पहिनाव उढ़ाव साधारणतः ठीक होता है। ये वृक्षों की छाल पहिनती हैं, उन छालों के सूत चादर की झालर की भाँति घुटनों तक लटका करते हैं। इससे इनकी अपूर्व शोभा होती है। ये स्त्रियाँ असभ्य होती हैं; परन्तु सभ्य नारियों के समान इनको गहने प्रिय हैं। किन्तु जैसा इनका वेश है, वैसे ही इनके आभूषण भी होते हैं।

अब इनके आभूषणों का भी कुछ हाल सुनिये। गले में ये हड्डियों की मोहनमाला पहनती हैं। कान में हड्डियों की मुर्की पहनती हैं, फिर सफ़ेद और लाल मिट्टी से अपने शरीर को अनेक प्रकार से सजाती हैं। लोहे की खान से निकली मिट्टी जब आग पर रखने से लाल हो जाती है, तब यह उसे चर्बी में सान कर शरीर में लगाती हैं। इनके सिर सदा घुटघुट्ट रहते हैं। परन्तु सिर के बीचोंबीच से लेकर गर्दन तक थोड़े से बाल एक केश रेखा की तरह छोड़ दिये जाते हैं। तीक्ष्ण धार वाले पत्थर के टुकड़े या काँच इनके छुरे हैं। मर्द मूंछ डाढ़ी नहीं रखते, यहाँ तक कि, भौंहों के बाल तक ये साफ़ करवा डालते हैं। बाल न रखने का कारण यह है कि, इस द्वीप में डाँस और मच्छड़ों का बड़ा भारी उपद्रव है। यदि ये लोग बाल रक्खें तो वे बालों में घुस बसेरा लें।

इन लोगों के शरीरों में भाँति भाँति के गोदने गोदाने का बड़ा शौक है। यद्यपि इनकी गोदना गोदाने की क्रिया बड़ी दारुण है, तथापि ये पीड़ा की परवाह न कर, अपना शौक पूरा करते हैं। पैने नोकदार पत्थर या काँच से शरीर का चमड़ा गोद दिया जाता है। ऐसा करने से शरीर का विचित्र रूप बन जाता है। गोदना गुदवाते समय इन लोगों के शरीरों से लोहू बहुत निकलता है। परन्तु ये इसकी कुछ भी परवाह नहीं करते। कारण यह कि, जब तक ये गोदना नहीं गुदाते; तब तक इनको विवाह करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता। विवाह का अधिकार प्राप्त होने पर भी ये विवाह करते तभी हैं, जब अपने परिवार को चलाने योग्य हो जाते हैं। पुरुष सोलह वर्ष और स्त्रियाँ तेरह वर्ष की अवस्था होने पर व्याह के योग्य समझी जाती हैं। विवाह की रीति साधारण होती है।

व्याही हुई दुलहिन पति के घर आते ही घर के कामधंधे में लग जाती है। बड़ी मेहनत के कड़े काम भी नई दुलहिन बड़े आनन्द से करती हैं। स्त्रियाँ दल बाँध कर, समुद्र तट पर जातीं और घोंघे तथा अन्य जलचर जीवों को पकड़ती हैं। घर लौट कर घोंघों का मांस और शिकार से लाये हुए पशुओं का मांस पकाती हैं।

स्त्रियाँ लड़के जनने पर उन्हें ठंडे जल से स्नान कराती और आग से तपाती हैं। इस नियम को ये अवश्य पालन करते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि, ऐसा करने से युवावस्था में शीत और गर्मी सह लेने की शक्ति इनमें आ जाती है।

बच्चों का प्रेम भी इनमें अधिक पाया जाता है। बच्चों को पीठ पर बाँध, ये सब ठौर घूमा फिरा करती हैं। इनके यहाँ नामकरण की प्रथा भी पायी जाती है। इनके बालक और बालिकायें जल और जंगलों में घूमा करते हैं। इसलिये इनको बहुधा अकाल ही में मौत का सामना करना पड़ता है। इनके दो या तीन से अधिक बाल बच्चे नहीं जीते। ये लोग स्वस्थ और दीर्घजीवी कम होते हैं। बहुत से तो तीस पैंतीस ही वर्ष में शरीर त्याग करते हैं।

इनका देश जंगली है। सूर्य की खरी किरणों और समुद्र के प्रचण्ड वायु के कारण ये सदा ज्वर के वेग से दुखी रहते हैं और इनका शरीर शीघ्र जीर्ण हो जाता है। ये औषधि आदि कुछ नहीं करते। ये लाल रंग की मिट्टी को पोतना ही सब रोगों की चिकित्सा मानते हैं। इसीसे इनकी मृत्यु-संख्या अधिक होती है और दिन दिन इनकी जन-संख्या घटती जाती है।

प्रश्न

१—अंडमन द्वीप कहाँ हैं ?
२—वहाँ के निवासियों का भोजन क्या है ?
३—वहाँ वाले दीर्घजीवी क्यों नहीं होते ?
४—वहाँ गोदना क्यों गोदवाया जाता है ?

बीसवाँ पाठ

सुलतान को बुढ़िया की शिक्षा

शक्तिशाली—बलवान् । लोलुप—लोभी । इलाज—दवा, उपाय । लालायित—इच्छुक । गोत—वंश ।

सुलतान महमूद ग़ज़नवी बड़ा शक्तिशाली बादशाह था । अफ़गानिस्तान का तो यह वास्तव में सुल्तान था, परन्तु अन्य देशों के लिये यह डाकुओं ही का सुलतान था । यह धनलोलुप था, जिसके लिये देशों को चौपट करने में इसे दया और विचार ने स्पर्श भी नहीं किया था ।

एक दिन एक बुढ़िया ने, जिसके लड़के को लुटेरों ने एराक के जंगल में मार डाला था, सुलतान से फ़रयाद की । सुलतान महमूद ने कहा कि, वह मुल्क अभी हाल ही में जीता गया है, इसीसे अभी उसका प्रबन्ध नहीं हो सका । इस पर बुढ़िया ने कहा, जिस मुल्क का तू शीघ्र प्रबन्ध नहीं कर सकता, लालच में पड़, उसे जीत कर,

सुलतान को बुढ़िया की शिक्षा
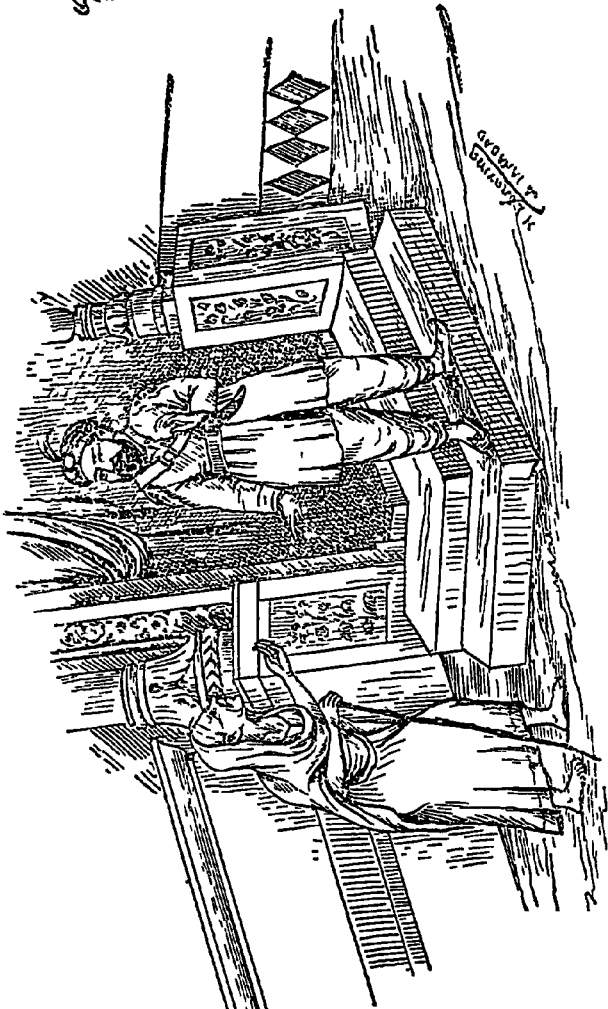
उसको नाश क्यों करता है ? लालच में तो तू परमेश्वर को भी नहीं डरता ? तू तो जब अवसर पावेगा ; तब प्रबन्ध करेगा। मेरे तो एक ही लड़का था। क्या किसी के पास अब मेरे दुःख दूर करने का इलाज है। मैं ही नहीं, मुझ जैसे कितने ही लोग रोते बिलबिलाते होंगे।

लज्जित होने के अतिरिक्त महमूद के पास इसका उत्तर ही क्या था। बालको ! बुढ़िया की यह शिक्षा महमूद ही के लिये नहीं है, प्रत्येक प्राणी को इसे जान लेना और व्यवहार में लाना चाहिये। आजकल प्रायः अधिकांश लड़ाई झगड़े इसी शिक्षा पर ध्यान न देने के कारण ही होते हैं। जैसे किसी के पास बहुत भूमि है परन्तु उससे लाभ उठाना तो दूर रहा, लोग लोभ में फँस छलबल से और भी भूमि ले लेने के लिये लालायित रहते हैं।

किसी के पास उजड़ा बाग़ है, तो वह उसकी सेवा न कर, दूसरे के बाग के लिये लालायित रहता है। यदि कोई वस्तु किसी के पास है, तो वह उससे न तो आप ही लाभ उठाता है और न दूसरों को उसे देकर वह यश ही प्राप्त करता है। जैसे एक पुरानी कहावत है "सड़ गल जाय गोत नहिं खाय"। जो लोग अपने पदार्थों का किसी प्रकार व्यवहार नहीं करते और दूसरों को उससे लाभ

पहुँचा कर यश भी प्राप्त नहीं करते, वे भी सुलतान महमूद के समान ही निन्दा के पात्र हैं।

अतएव हे बालकों! तुम्हारे पास जो पदार्थ हों, फल फूल, पुस्तक, वस्त्रादि उनसे तुम स्वयं लाभ उठाओ और भाई, बहनों और मित्रों को प्रसन्न करो। लोभ से उन्हें नष्ट और बेकाम कभी न होने दो। बड़े होने पर घर, बाग, गाय, बैल आदि जिसकी सफ़ाई अथवा सेवा तुम न कर सको, उसको जिस प्रकार उचित हो दूसरे योग्य व्यक्ति को दे यश कमाओ। यदि कोई चतुर बालक अपनी सम्पत्ति अपने पास रखना ही चाहता है तो, परमेश्वर का ध्यान कर उसे अटूट परिश्रम व प्रबन्ध कर, अपने घर द्वार को साफ़, भूमि को हरी भरी; गाय, बैल, घोड़े आदि को मोटा ताज़ा बनाये रखना चाहिये।

प्रश्न

१—बुढ़िया ने महमूद को क्या शिक्षा दी?

२—उस शिक्षा पर न चलने से क्या हानि है?

३—'सड़ गल जाय गोत न खाय' इस कहावत का अर्थ लिखो और वाक्य में प्रयोग करो?

———

इक्कीसवाँ पाठ

अजित और दुर्गादास

पदच्युत—स्थान से उतार कर। विपक्षी—शत्रु।

जिस समय महाराज अजित जोधपुर को अधिकार में कर, मारवाड़ से मुसलमानों को निकाल रहे थे, उसी समय औरंगज़ेब का पुत्र मोअज़्ज़िम शाहआलम बहादुर शाह की पदवी धारण कर, दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। मारवाड़ का उपर्युक्त समाचार सुन कर, वह सेना ले अजमेर की ओर चला। उसने वहाँ अजित को आमंत्रित कर और धोखा दे, क़ैद कर लिया और जोधपुर पर अधिकार जमाया। बादशाह अपने साथ अजित को भी दक्षिण ले गया। इसी प्रकार छल कर के बादशाह ने आमेरनरेश महाराज जयसिंह को भी फँसा लिया। किन्तु ये दोनों महाराज यत्नपूर्वक नर्मदा किनारे से छिपकर लौट आये। उदयपुर पहुँच वहाँ महाराणा की सम्मति से उन्होंने जोधपुर पर बीस हज़ार राठौरों के साथ चढ़ाई की। सेनापति महरावखाँ को जीत कर, उससे दुर्गादास ने प्रतिज्ञा करा ली कि, यदि वह अजित की ओर रहेगा तो उसका प्राण न लिया जायगा।

विजयसिंह को आमेर के राजसिंहासन पर बैठा दिया था। जयसिंह अजित के साथ थे। अब अजित आमेर राज्य पर चढ़ गये। वहाँ का सेनापति सैयद हुसेन छः हज़ार सैनिकों समेत मारा गया। जयसिंह फिर से आमेर राज्य के स्वामी हुए। इसके पीछे अजित ने दिल्ली में पहुँच और सम्राट् से कह कर, "जज़िया" कर उठवा दिया।

बहादुर शाह के मरने के बाद तीन बादशाह दिल्ली के तख़्त पर बैठे और मारे गये। तब फर्रुख़सियर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। यह भी अनेक उपद्रव करने के कारण, महाराज अजित की सहायता से विपक्षी सय्यद भाइयों द्वारा मारा गया।

अनेक सुलतान दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठे और मारे गये। अन्त में मुहम्मदशाह या "रंगीलाशाह" देहली के सिंहासन पर बैठा। उसने कई एक सर्दारों को मिला कर, सय्यद भ्राताओं को मार डाला और महाराज अजित से छेड़छाड़ प्रारम्भ की। जब अजित ने यह समाचार सुना, तो अजमेर पर आक्रमण कर, उसे अपने हस्तगत कर लिया। वहाँ का सुदृढ़ क़िला "तारागढ़" भी अजित ने अपने अधीन कर लिया। वहाँ उसने, अपने नाम का सिक्का और अपने नाम के बाट चलाये।

संवत् १७७८ में मोहम्मदशाह ने फिर अजमेर को वापस ले लेना चाहा। इसलिये उसने मुज़फ़्फ़रखाँ को भेजा। अजित ने यह समाचार सुन, अपने पुत्र अभयसिंह को भेजा। जब मुज़फ़्फ़रखाँ ने राठौरों की भारी सेना को देखा, तब वह डर कर कायरों की तरह बिना लड़े ही भाग गया। अभयसिंह यह देख लूटता पाटता दिल्ली की ओर बढ़ा। किन्तु रिवाड़ी तक जाकर अजमेर लौट आया। वहाँ वह अजित से जाकर मिला।

मोहम्मदशाह ने अपने एक सर्दार नाहरखाँ को, चार हज़ार सैनिक देकर, अजित के पास युद्ध बंद करने को भेजा। उस समय अजित साँभर में था। नाहरखाँ ने वहाँ पहुँच कर, अजित और अभय से बड़ी गुस्ताख़ी से बातचीत की। इसलिये क्रुद्ध हो उन्होंने उसकी चार हज़ार सेना समेत उसको मरवा डाला।

जब मोहम्मदशाह ने यह हाल सुना, तब उसने दूत की मृत्यु का बदला लेने को एक बड़ी भारी सेना महाराज जयसिंह, हैदरकुली आदि बड़े बड़े सेनापतियों के अधीन भेजी। उन्होंने अजित को अजमेर के तारागढ़ नाम के क़िले में घेर लिया। वे लोग चार महीने तक क़िला घेरे रहे पर उसे जीत न सके। अन्त में महाराज जयसिंह ने दोनों दलों में सन्धि करवा दी।

इसी तरह मुसलमानों को कई बार हरा कर और अपना राज दृढ़ कर, महाराज अजित स० १७८० वि० के आषाढ़ मास में स्वर्ग सिधारे। उनके मरने से सारे मारवाड़ में शोक छा गया।

इसके पहिले वीर केसरी दुर्गादास राठौर भी स्वर्ग-वासी हो चुके थे। वे राजपूत जाति के भूषण स्वरूप थे। उनका आचरण बहुत ही विशुद्ध था। वे बड़े ही स्वामि-भक्त, राजभक्त और निर्लोभ थे। बड़े ही संकट में पड़ कर, उन्होंने अजितसिंह की रक्षा की।

एक बार दिल्ली के बादशाह ने उनके पास चालीस हज़ार सोने की मुहरें भेजीं। उन दिनों उसका पुत्र अकबर उनके शरण में था। बादशाह का यह मतलब था कि, जिससे वे अकबर को छोड़ दें। किन्तु वीर दुर्गादास ने ये सब मोहरें अकबर को दे दीं। यदि वे कुमार अजित को औरंगज़ेब को सौंप देते तो जितना धन चाहते पा जाते। परन्तु लोभ से दुर्गादास ऐसा नीच कर्म कब कर सकते थे?

वीर दुर्गादास बड़े ही राजनीतिकुशल पुरुष, स्वधर्म प्रेमी और स्वदेश-प्रेमी थे। मारवाड़ी कवियों ने उनकी वीरता का वर्णन किया है। वहाँ का कोई विरला ही

राजपूत होगा, जो उनके विषय का यह दोहा न जानता होगा।

जननी सुत ऐसो जनै, जैसो दुर्गादास।
बाँधि मुड़ासा राखियो, बिन खंभा आकास॥

प्रश्न

१—अजित कौन थे?
२—दुर्गादास के बारे मे क्या जानते हो?

बाईसवाँ पाठ

बुद्धिबल

विषधर—ज़हरीले। प्रतिबिम्ब—परछाईं।

संसार में जितनी शक्तियाँ हैं वे सब बुद्धि ही के अधीन हैं। मनुष्य, बुद्धिबल ही से तो व्याघ्र, हाथी, गैंडे, घोड़े, ऊँट, भैंसे आदि सब बलवान जन्तुओं के वश में कर, उनसे अपने मनमाने काम लेते हैं। विषधर जन्तु साँप, बिच्छू आदि से खेलते हैं, बन्दर, रीछ आदि के नचाते हैं, आकाशगामी पक्षियों को भी पिंजड़े में बद कर लेते हैं। भाफ़ के पकड़ गाड़ी दौड़ाते हैं, बिजली से प्रकाश का काम लेते और दूर से दूर देशों के समाचार मँगवाते और वहाँ भेजते हैं। मिट्टी से अन्न, धातु, उपधातु और

रत्नों को खोद कर खोज लेते हैं। समुद्र से मोती मूंगे ढूँढ़ लाते हैं। कहाँ तक कहा जावे प्रकृति और पुरुषार्थ को अपने अधिकार में कर के बुद्धि ही तो संसार में सर्वत्र शोभा फैलाये हुए है। बुद्धि से काम लेने वाले ही संसार में सुख और यश पाते हैं।

राजपूताने में चित्तौरगढ़ के राना भीमसिंह की रानी बहुत ही रूपवती और सुन्दरी थीं। उसके रूप, गुण एवं सौन्दर्य्य की प्रशंसा कर्पूर की मनोहर सुगंध के समान सर्वत्र फैली हुई थी। उस समय अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का बादशाह था। इसने अपने चचेरे ससुर जलालुद्दीन को प्रेम से आलिङ्गन करते समय छुरे से मार कर, दिल्ली का सिंहासन लिया था। ऐसा मनुष्य पद्मिनी की प्रशंसा सुन, कैसे चुपचाप रह सकता था। निदान अलाउद्दीन बड़ी भारी एक सेना सजा कर, चित्तौरगढ़ पर चढ़ गया और उसे घेर लिया। बहुत दिनों तक लड़ते भिड़ते वह वहाँ घेरा डाले पड़ा रहा; परन्तु फल कुछ न हुआ। तब उसने भीमसिंह के पास सन्धि का सँदेसा भेजा। सन्धि में एक शर्त यह भी लगायी कि, मुझको रानी पद्मिनी का दर्शन मिले। राजा ने यह कहा कि, अच्छा एक ओर एक बड़ा शीशा लगा रहेगा, दूसरी ओर दूर से रानी निकल जायगी, तुम शीशे के भीतर उसकी

परछाई का दर्शन कर लेना। राजा भीमसिंह ने इस उपाय से रक्तपात बचाना चाहा और गढ़ के भीतर बादशाह को आमन्त्रित किया। दर्पण में रानी के प्रतिबिम्ब का दर्शन कर बादशाह लौटा। राना भीमसिंह उसके पहुँचाने के लिये क़िले के बाहर आये। शाही सिपाही पहले ही से तैयार थे। अतः बाहर निकलते ही बादशाही सिपाहियों ने राना भीमसिंह को क़ैद कर लिया और वे उनको अपने डेरे पर ले गये।

वहाँ से अलाउद्दीन ने क़िले में कहला भेजा कि, यदि रानी अपने राजा को छुड़ाना चाहती हो तो, वह मेरे साथ चले और राना, चित्तौड़ का राज करे। वीर पद्मिनी रानी ऐसा समाचार सुन कर, व्याकुल हो गयी। पीछे से धीरज धर कर, वह बुद्धिदेवी के शरण में गयी और राजा के छुड़ाने का एक उपाय ढूँढ निकाला। पद्मिनी ने बादशाह से कहला भेजा कि, बादशाह के हरम में आने के लिये मैं तैयार हूँ। परन्तु अकेली नहीं आ सकती। मेरे साथ मेरी सखी सहेली राजपूतनी तथा दासियाँ भी आवेंगी। अलाउद्दीन इस बात पर राज़ी हो गया। रानी एक डोले में बैठी और उसके साथ सात सौ राजपूत योधा, स्त्रियों के वेष में हथियार बाँध कर बादशाह के डेरे की ओर चले। डोलों के कहार भी लड़ने वाले

सैनिक ही थे। अलाउद्दीन डोलों को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और चाहा कि, राजा तो क़ैद है ही, इसे कौन छोड़ता है। रानी पद्मिनी समेत और भी अनेक राजपूतनियाँ हाथ लगीं।

वीर योद्धा राजपूत डोलियों से कूद पड़े और शीघ्र राना भीमसिंह और रानी पद्मिनी को घोड़ों पर चढ़ा कर चित्तौरगढ़ की ओर ले चले। मुसलमानी सेना असावधान थी। अतः जो सिपाही सामने आये वे राजपूतों के हाथ से मारे गये और हार मान कर उनको उसी समय दिल्ली लौट जाना पड़ा और बदला लेने के लिये नई सेना सजानी पड़ी। शाही सेना बहुत थी, किन्तु बुद्धिदेवी के चरणों की सेवा छोड़ने ही से उसे इस बार हार कर भागना पड़ा था।

बालको! रानी पद्मिनी ने कैसी बुद्धिमत्ता से कार्य्य किया कि, थोड़े से सिपाहियों के साथ वह बड़ी भारी मुसलमानी सेना के बीच से अपने राजा को भी निकाल लायी और अपनी मर्य्यादा की रक्षा कर आप भी निकल आयी। इसीसे नीतिवालों ने कहा है कि, जो बुद्धिमान है वही बलवान भी है। बुद्धि न हो और बल हो, तो वह बल किसी काम का नहीं।

प्रश्न

१—अलाउद्दीन कौन था ?

२—भीमसिंह को उसने क्यों कैद किया ?

३—पद्मिनी ने भीमसिंह को कैसे छुड़ाया ?

तेईसवाँ पाठ

गुसांई तुलसीदास के उपदेश

सुअव—आम। विटप—वृक्ष। कंचन—सोना।

आपु आप कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ॥
तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरन एक मंत्र है, तजि दे वचन कठोर॥
तुलसी सन्त सुअम्ब-तरु, फूल फलहिं परहेत।
इततें जे पाहन हनैं, उततें वे फल देत॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तब लग पण्डित मूरखौ, तुलसी एक समान॥
स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपति नसाय।
तुलसी गुरु-उपदेश बिनु, सो किमि जानौ जाय॥
गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध॥
नीच निचाई नहिं तजै, जो पावै सत संग।
तुलसी चन्दन विटप बसि, विष नहिं तजत भुजंग॥

तुलसी तीन प्रकार तें, हित अनहित पहिचान।
परवस परे परोस बस, परे मामिला जान॥
तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥
आवत ही हर्षे नहीं, नयनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह॥
तुलसी जग में आइ कै, कर लीजे दो काम।
देबे कों टुकड़ा भलो, लेवे को हरिनाम॥

प्रश्न

१—वसीकरन मन्त्र क्या है?

२—मूर्ख और विद्वान् किस दशा में समान हैं?

३—नीचो का स्वभाव कैसा होता है?

४—हित और अनहित किस प्रकार पहचाना जाता है?

चौबीसवाँ पाठ

बड़ा आदमी

जो अपने को कहै बड़ा, वह बड़ा न जग में कहलाता।
और लोग जिसको कहते हैं, बड़ा वही समझा जाता॥
बड़ा नहीं होता कोई भी, धन दौलत के पाने से।
नहीं बड़ा बनता है नर, कुछ ऊँचे महल चुनाने से॥

सच पूंछो तो वड़ा आदमी होना सव से टेढ़ा काम।
वड़े गुनों के विना न होता, कभी वड़े लोगों में नाम॥
जो तुम होना वड़े चाहते, तो उसका है एक उपाय।
दुर्वल दीन अनाथ जनों की, तन मन धन से करो सहाय॥
भले वुरे का ज्ञान न जिसको, अहङ्कार में रहता चूर।
अपनी आप वड़ाई करता, क्रोध लोभ जिसमें भर पूर॥
ऐसा मनुज धनी भी होवे, वड़ा न वह कहलावेगा।
समझदार लोगों के आगे, छोटा समझा जावेगा॥
सद्गुण से तो वड़े वने हैं, वड़े वही कहलाते हैं।
वुद्धिमान विद्वान जनों में, सारे आदर पाते हैं॥
प्रिय वालक! जो वड़ा वना चाहो, तो तज कर सव अन्याय।
सव से छोटे वनो यही है, सव से सुन्दर सीधी राय॥

—राधाकृष्ण मिश्र

प्रश्न

१—वडे वनने का क्या उपाय है?
२—वडे वनने के लिये क्या करना चाहिये?

पचीसवाँ पाठ

दुर्जन और सज्जन

निरपराध—वेकसूर।

दुर्जन जो विद्या पढ़ता है,
तो विवाद सव से करता।

दुर्जन जो धनवान बनें,
तो अहङ्कार ही में मरता ॥
दुर्जन के जो तन में बल हो,
तो निरपराध को पीड़ा दे ।
विद्या धन बल पाकर भी,
नहिं धन्यवाद औरों से ले ॥

सज्जन किन्तु सदा विद्या से,
सब मनुजों को देता ज्ञान ।
सज्जन जो धनवान होय तो,
दीनजनों को करता दान ॥

सज्जन के शरीर में जो हो,
अन्य जनों से भारी बल ।
तो उससे वह दीन जनों की,
सदा करे रक्षा केवल ॥

—राधाकृष्ण मिश्र

प्रश्न

सज्जन और दुर्जन के क्या लक्षण हैं ?

छब्बीसवाँ पाठ

पुनः करो उद्योग

भीत—डर, भय।

देखो बात याद यह कर लो,
पुनः करो उद्योग।
यदि तुम सफल न पहिले हो तो,
पुनः करो उद्योग।
साहस को दिखलाओ अपने,
क्योंकि सदा साहस ही से।
जीत सकोगे भीत न होना,
पुनः करो उद्योग।
बार एक दो सफल न हो यदि,
पुनः करो उद्योग॥
विजय चाहते हो जो तो तुम,
पुनः करो उद्योग।
प्रयत्न करने में क्या लज्जा,
यदि न सफलता आवे हाथ।
तो क्या करना तुमहि चाहिये,
पुनः करो उद्योग।
काम कठिन जो जान पड़े तो,
पुनः करो उद्योग।

समय सफलता देगा तुमको,
पुनः करो उद्योग।
जिसे सभी करते हैं उसको,
धीरज धर तुम क्यों न करो।
इसी नियम को सदा याद रख,
पुनः करो उद्योग।

—गोविन्दशरण त्रिपाठी

प्रश्न

१—कौन सी बात याद कर लेनी चाहिये ?
२—विजय चाहने वाले को क्या करना चाहिये ?
३—किस नियम को ध्यान में रखना चाहिये ?

सताईसवाँ पाठ

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना

गृही—घरवाली। जाया—स्त्री। आन—आकर। विजित—जोता गया। मुदित—प्रसन्न। बैन—वचन। वित—धन। सहम—रुक कर। तिय—स्त्री। सुमति—सुन्दर बुद्धि।

एक गाँव में था किसान इक, गृही बाल बच्चों वाला।
तीन साल तक के अकाल से, पड़ा अजब उसका पाला॥
काटा कुछ श्रम साहस से, पर जब धन चुकने को आया।
बेबस हो परदेश चला, लेकर पुत्र और जाया॥
बड़ी सुमति थी उसके घर में, वह घर का उत्तम सरदार।
पत्नी भी लक्ष्मी समान, सन्तान रहै आज्ञा अनुसार॥

चार कोस चल कर दुपहर को, किया एक जंगल में वास ।
बैल खोल चरने को छोड़े, कहा पुत्र से काटो काँस ॥
काट काट कर हमको दीजै, रस्सी हम करलें तैयार ।
तुम भी तुरत बनाओ रोटी, कहा प्रिया से करके प्यार ॥
लगे मुदित सब काम काज में, थे बच्चे किसान के और ।
बने सहायक वे भी अपने, भाई औ माता के तौर ॥
एक वृक्ष के तले बैठ तब रस्सी, बटने लगा किसान ।
उसी पेड़ पर प्रेत जो रहता था, सो डर कर बोला आन ॥
" रस्सी बटने पर तत्पर हो, इससे तुम क्या लोगे काम ।"
यह यों बोला "सुना था हमने, भूत एक रहता इस ठाम ॥
अच्छा हुआ आय तुम पहुँचे, रस्सी बट कर बाँधूँगा " ।
डरा भूत बोला-" मत बाँधो, प्रभु ! मैं धन तुम को दूँगा ॥
प्राणदान के बदले तुमको, रुपये दूँगा पाँच हज़ार ।
गड़े हैं इसी पेड़ के नीचे, लेकर कीजे दया अपार " ॥
तब किसान ने सारे रुपये, खोद उसी दम लिये निकाल ।
कहा भूत से चैन करो, औ काटो सुख से अपना काल ॥
भूत विजित हो गया मुदित सब, मिल जुल सुख से खाना खाय
गाड़ी जोत सवार हुए, औ शाम तलक घर पहुँचे आय ॥
उन्हें देख कर एक पड़ोसी, जिस के घर सुख से दिन रैन ।
कलह पाहुनी ठहरी रहती, सो किसान से बोला बैन ॥

"कहाँ गये थे कैसे लौटे, काम कहो क्यों हो आया ?
जाते थे परदेश वित्त को, उसे पास ही में पाया ॥
बात समझ में उसे न आई, उसने पूँछा सारा हाल।
सुनते ही वह अति प्रसन्न हो, अपने घर पहुँचा तत्काल ॥
प्रातकाल नारी बच्चों को, मार पीट तैयार किया।
गाड़ी जोत सवार करा के, उसी ठौर जा साँस लिया ॥
बैल खोल चरने को छोड़े, लड़के से यह कहा सहम।
काँस काट के हमको दीजो, रस्सी ही बट डालें हम ॥
पुत्र झिड़क बोला आपी, काट लो तुम काँस कपास।
झगड़ालू था पर यह सुनकर, बोला तिय से वचन उदास ॥
"रोटी तुम करलो" वह बोली, "पीस तो रक्खा है न पिसान!"
बड़े लाड़ले बच्चे औ तुम, करो खाव मेरे अनखान।
बड़ी करकसा थी वह नारी, था भी वह लड़कर आया।
मन में हो लाचार दुःखित वह, काँस काट खुद ही लाया ॥
सब बातों को सुना भूत ने अपनी आँखों देखा हाल।
उस किसान की नकल जान कर, पास आय उसके तत्काल ॥
हँस कर बोला हे अजान ! क्या तू भी मुझ को बाँधेगा।
जो अपनो पर सध न सके, सो औरों पर क्या साधेगा ॥
तेरे वश में तो तेरे ही, कलही नारी पुत्र नहीं।
जो इनको भी बाँध न सकता, भूत बाँध सकता है कहीं ॥

तेरे भोलेपन को लख कर, दिया तुझे प्राणों का दान।
क्षेम कुशल से भवन लौट जा, पकड़ आज से अपना कान॥

वह घर बैठ प्रेम की डोरी, बाँध सुमति से प्रिय परिवार।
"जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना", यह है उपदेशों का सार॥

सुन कर उस मूरख की आँखें, खुली और आया कुछ होश।
गाँठ बाँध उसकी सलाह वह, फिर आया करके सन्तोष॥

—बाबू रामपतिसिंह

प्रश्न

१—पहले किसान को धन कैसे मिला?
२—दूसरे किसान की स्त्री का स्वभाव कैसा था?
३—दूसरे किसान और भूत में क्या बातें हुई?
४—पहले किसान की कथा गद्य में लिखो?

अट्ठाईसवाँ पाठ

जय रामचन्द्र

विभूषण—शोभा। भव—संसार। भानु—सूर्य। तिमिर—अंधकार। वपु—शरीर। तूनीर—तरकस। कटि—कमर। विरञ्चि—ब्रह्मा। अहिराज—शेष नाग। शारद—सरस्वती। सदन—घर। घन—समूह। अनुज—छोटा। भृगुकुल-कमल-पतंग—परशुराम। पङ्कज—कमल। सुवन—पुत्र। पायक—धावन। त्रसित—डरा हुआ।

जयति जयति जय रामचन्द्र, रघु-वंश-विभूषण।
भक्तन हित अवतार धरन, नासक भव-दूषण॥

जयति भानु-कुल-भानु कोटि, ब्रह्माण्ड प्रकाशन।
जयति जयति अज्ञान मोह निशि तिमिर विनाशन॥
जय निज लीला वपु धरन, करन जगत कल्यान मय।
जय कर-धनु-शर तूनीर कटि, सीय सहित श्रीराम जय॥
शिव विरञ्चि अहिराज पार कोऊ नहिं पावैं।
सनकादिक शुक शारद नारद ध्यान लगावैं॥
मुनि जन जोग समाधि धरहिं, वहु विधि जा कारन।
तदपि रूप वह सकहिं न करि, उर अन्तर धारन॥
सो अखिल ब्रह्म शिशु रूप धरि, खेलत दशरथ के सदन।
कौशिलादि निरखत मुदित मन, जयति राम आनन्द घन॥
सहित अनुज वन वीच करी, मुनि मख रखवारी।
मारग जात निहारि नारि, पाथर की तारी॥
जनकपुरी में जाय, यज्ञ को मान वढ़ायो।
नृपति प्रतिज्ञा राखि, सिया को मन हुलसायो॥
शिव चाप तोरि खल नृपन को मान दर्प चूरन करयो।
अरु भृगु-कुल-कमल-पतंग को, चाप खैंच संसय हरयो॥
सुनि विमात के वचन, तुरत वन को उठि धाये।
रुदित छोड़ि पितु मातु प्रजा, मन सोच न लाये॥
अवध तजन को खेद नहिं, धन धाम तजन कर।
किन्तु भरत को ध्यान एक, उर माहिं निरन्तर॥

जय जटाजूट कर धनुष शर, अंग भस्म वलकल-वसन ।
सिय अनुज सहित वन गमन करि, पिता वचन पालन करन ॥
नेही जान निषाद नीच, छाती सों लाये ।
लछमन सम प्रिय भाषि, प्रेम सों हियो जुड़ाये ॥
स्वाद बखानि बखानि, भिल्लनी के फल खाये ।
निज कर-पङ्कज ताहि, दाह करि आगे धाये ॥
परस्यो कर सीस जटायु निज, धाम ताहि छन में दयो ।
जय पवन-सुवन की प्रीति लखि, अङ्ग-अङ्ग पुलकित भयो ॥
सुग्रीवहिं लखि दुखी, आपनी दसा बिसारी ।
फरकहिं भुजा बिशाल, देहि थहरावति सारी ॥
एक बान सों मारि वालि, सुरधाम पठायो ।
तारा करि परबोधि, भक्त को कष्ट मिटायो ॥
जय वालि-सुतहिं पायक करन, निरखि जाहि पुलकित हियो ।
करि तिलक माथ कपिराय के, भीतरंक राजा कियो ॥
छाँड़ि गेह अरि भ्रात, आय चरनन सिर नायो ।
अग्रज के डर डरयो, मनहिं अति हि सकुचायो ॥
चितवन ही इकवार अहो, पलटी ताकी गति ।
लात खाय के कढ्यो, भयो छिन में लंकापति ॥
दससीस मारि महिभार हरि, असुरन दीनी विमल गति ।
जय जयति राम रघुवंशमनि, जाहि दीन पर नेह अति ॥

देवराज भये मुदित अमर पुर, बजत बधाई।
बजहिं दुन्दुभी, भीर विमानन की नभ छाई॥

सुरबाला सब मुदित अंग, फूली न समावैं।
फूलन बरसा होहिं, देवगन अस्तुति गावैं॥

असित जिये बहु काल प्रभु, असुर मार दीन्हीं अभय।
अब जाय अवध परतोषिये, जयति राम रघुवीर जय॥

पूरन ससि जिमि निरखि, उदधि बाढ़त तुरग सों।
देखि घटा घन घोर मोर, नाचत उमंग सों॥

तैसो आज अवध सुख, उमड़त नाहिं समावत।
निरखि राम रिपु जीति, भ्रात सीता संग आवत॥

प्रमुदित गुरु जननी नारि नर, सुख न जात केहु कौ कह्यो।
अरु भ्रात-सिरोमनि भरत को, मोद जलधि हिय में बह्यो॥

हम प्रभु दीन मलीन हीन, सब भाँति दुखारी।
धर्मरहित धनरहित, ध्यानच्युत बहु अविचारी॥

यदपि न काहू भाँति सुखी, भोगत क्रूर मन फल।
सोचि सोचि निज दशा, भरयो आवत नयनन जल॥

पै तदपि होत सूखो हियो, हरयो सुमिर दिन आज को।
राज-तिलक हिय में बसो, श्रीरामचन्द्र महाराज को॥

—बालमुकुन्द गुप्त

प्रश्न

१—सुग्रीव कौन था और उसे राज्य कैसे मिला ?

२—त्रिशंकु के बारे में क्या जानते हो ?

उन्तीसवाँ पाठ

श्रीभारती विनय

रञ्जित—शोभित। दुति—छवि। अरुन—लाल। पंकज—कमल। सरोज—कमल। दामिनि—बिजली। पुहुप—फूल। दृगन—आँख।

वीणा पुस्तक रञ्जित हस्ते। भगवति भारति देवि नमस्ते ॥
सत-दल सेत कमल पर सोहौ। कुन्द बरनि सुन्दरि तुम कोहौ ॥
राजहु बसन बसन्ती धारे। तन दुति दसहु दिसान पसारे ॥
तरुन अरुन पंकज पद सोहैं। जिनहि जोहि जग जन मन मोहैं ॥
रुनुक झुनुक पैंजनि धुनि छाई। पद परसत जिय जात जुड़ाई ॥
कर सरोज श्रुति गाथ सुहाई। जिहि लिखि लेखनि लहत बड़ाई ॥
यदि बालक भारत नभ सोहौ। आई आजु कहाँ तें कोहौ ॥
मुख माधुरी निहारि निहारी। मातु मया उपजति अतिभारी ॥
जग मोहनि तव मृदु मुसकानी। सुधा स्वाद दायिन बरबानी ॥
जदपि तुम्हैं पहिचानत नाहीं। पै अस जानि परत मन माहीं ॥
तुम हो कहा भारती देवी। भारत आदिशक्ति सुरसेवी ॥
धन्य मातु भल दरशन दीन्हा। पै केहि हेतु इतिक श्रम कीन्हा ॥
अब तव पूजन जोग न कोऊ। करहिं जो चन्दन पुहुप संजोऊ ॥

नहिं अब बालमीक नहिं व्यासू । नहिं कोउ मुनि जो हि श्रुति अभ्यासू॥
कालिदास कविवर कहुँ नाही । तब भारतहु न भारत माहीं ॥
काशी[1] कीरति[2] चण्डी[3] कङ्कन[4] । नाहिन कोउ जो कियत तव पूजन॥
लीलावती गारगी मीरा । रही जु तव प्रेमिनि मति धीरा ॥
चन्द सूर तुलसी रहिमनहूँ । हरिससि[5] आदिक तव प्रिय जनहूँ ॥
सब तजि गये भारतहि भाई । को पूजि है तोहि मन लाई ॥
अब तो ह्याँ हमसम सब लोग । बसहि मन्दमति अतिहि अजोग॥
जानहि नहिं पूजन उपचारू । बैठे त्यागि वेद व्यवहारू ॥
कुकृत कलंकित तन मन भाना । पद पकज परसत भय माना ॥
अहङ्कार उन्नति यह ग्रीवा । नवति न चाहि चरन सुख सीवा ॥
किट किट रटत जु जीह खियानी । किमि गावै तुअ गुन सुर-बानी॥
रहे जो आरज भक्त तिहारे । हम उनके कुल बोरन हारे ॥
उनके गुन कर लेसहु नाहीं । बूड़े रहहिं तदपि मन माहीं ॥
हमरे हिय पखान कर दारू । अहे जननि ! छिन खोल निहारू ॥
लखि परिहै सब ओर अपारा । पाप ताप कारिख औ छारा ॥
हाहा मान यही हरि लेहू । करि कुपूत पर सहज सनेहू ॥
द्रगन ज्ञान अंजन कहँ आँछी । दीजै दूषित दीठहिं भाँजी ॥
श्रुति सम्मति मय दूध पियाई । नासहु जगत क्षुधा दुखदायी ॥
तब हम न्याय गङ्ग वर वारी । ह्वैहैं तव पूजन अधिकारी ॥
कर दरशन ह्वै पुलकित गाता । धोइहै द्रगजल पद जल जाता ॥

१, २, ३, ४ बंगाल के विद्वान हैं । ५ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

तुमहि रिझाय माय विधि नाना। लैहै विमल भक्ति वरदाना ॥
जिहि आगे त्रिभुवन प्रभुताई। तुच्छ तुच्छ अति तुच्छ दिखाई ॥

—प्रतापनारायण मिश्र

प्रश्न

१—पहले पद्य का अर्थ लिखो ?

२—दामिनि, पुहुप, दीठि, दृगन, वीणा, इन शब्दों के अर्थ लिखो और अपने बनाये वाक्यों में प्रयोग करो ?

तीसवाँ पाठ

शुक

बिम्ब—बिम्बाफल। धार—रेखा। नगन—रत्न। कीर—तोता। हुती—थी। स्याम—श्रीकृष्ण।

हरो हरो तू अहै, सबन के नयनन भायो।
हरो दुशाला ओढ़ि, मनहुँ अतिसै हरखायो ॥
लाल बिम्ब सी चोंचहु सों, अति लगत सुहायो।
मानहुँ बीरी चाबि चाबि के, बदन रचायो ॥
इन्द्र धनुष-रंगधार, कण्ठ मे तेरे सोहति।
विविध नगन की लरी सहित, सब के मन मोहति ॥
धन्य धन्य तू अहै, तोहि जगदीश संवार्यो।
सुन्दर सुर सों सुरस, तुहूँ हरि नाम उचार्यो ॥

मधुर सुरन सुनि तोहि, नरन बन सों गहि पकरयो।
पिंजर कारावास माहिं, गहि कै पुनि जकरयो॥
गुनहु भये तुव दोष, हाय विधि कैसी कीन्ही।
तोहि कैदि करि, काकन को सुख-सम्पति दीनी॥

तऊ कीर तू धन्य अहै, हरिनाम उचारत।
राम-कृष्ण पद टेरि टेरि कै, पाप पखारत॥
तेरी बोली सुनि सुनि, केते जन्म सुधारत।
तोहि पढ़ावत केते, नित्त अमंगल जारत॥
नयन मूँदि के सोचत है, का सुख उपवन के।
गये सो कुंज-विहार हाय! सरसावन मन के॥

वे फूली तरु डार, बयार बहारन पूरी।
वे फल भारन झुकी, झूमती शाखा रूरी॥
उनसों अब नहिं भेंट, कीर मत जिय तरसावै।
पिंजर ही में बैठि क्यों न, हरि ध्यान लगावै॥
होन हुती सो भई, सुकवि तजि चिन्ता मन की।
स्याम हिये धरि छोड़ि, सबै आशा अब वन की॥

—अम्बिकादत्त व्यास

१—तोते के विषय मे क्या जानते हो ?
२—११ वें और १२ वें पद्य का अर्थ लिखो ?
३—तोता धन्य क्यों है ?

एकतीसवाँ पाठ

टर्की का एक वीर लड़का

उन्मत्त—पागल। उत्तेजना—बढ़ावा। विच्युत—हटाना। निर्भीकता—निडरता। पौरुष—बल।

बालक हुसेन नूरी का पिता तुर्किस्तान के सुलतान की एक सेना में सिपाही था। लूलेबरगस नामक गाँव में वह वैरियों के हाथ से मारा गया। इस लड़ाई में शत्रुओं की जीत हुई। जीत के आनन्द में उन्मत हो, शत्रु के सैनिकों ने लोगों पर ऐसे अत्याचार किये कि, हुसेन नूरी

की असहाय माता को अपने दो पुत्रों के साथ भाग कर, शेटेल्जा नामक नगर में शरण लेनी पड़ी। अपनी प्यारी माता पर विपत्ति आई देख, वीर हुसेन नूरी से रहा न गया। उसने वैरी से इसका पूरा बदला लेने का ठान ठाना।

अपने प्रण को पूरा करने के अभिप्राय से वह शेटेल्जा में एक प्रसिद्ध सेनानायक के पास गया और मातृभूमि की शत्रुओं से रक्षा करने के हेतु उससे बंदूक और कुछ गोलियाँ माँगी। एक छोटी उम्र के बालक के मुख से ऐसी उत्तेजना पूर्ण बातें सुन और उन पर मुग्ध हो कर, सेनानायक ने उसको अच्छी तरह उत्साहित किया ; परन्तु उसकी कम अवस्था देख, उसे बंदूक और गोलियाँ देना उसने उचित न समझा। सेनानायक ने उस बालक को कुछ दिनों तक छावनी में रखा और समझा बुझा कर, उसे उसके प्रण से विच्युत भी करना चाहा। परन्तु बालक न तो अपनी प्रतिज्ञा से डिगा और न उस सेनानायक का समझाना ही फिर उसे अच्छा लगा। अतः वह एक दिन चुपचाप छावनी से खिसक गया और शेटेल्जा के पास एक रणक्षेत्र में बंदूक की खोज में जा निकला। सौभाग्यवश वहाँ उसे एक बंदूक और कुछ गोलियाँ मिल भी गयीं।

अगले ही दिन तुर्कों और बलगेरियनों में युद्ध छिड़ा। दनादन दोनों ओर से गोलियों की बाढ़ें दगने लगीं। लड़ने वालों के कानों के पास से सनसनाती गोलियाँ निकलने लगीं। रणक्षेत्र में जिधर देखो उधर ही घायलों के रोने और कराहने का शब्द सुनायी पड़ने लगा। इतने में तुर्कों की सेना के एक सेनानायक ने देखा कि, एक छोटासा बालक अपने शरीर की लंबाई से कहीं अधिक एक बंदूक हाथ में लिये, उससे शत्रु सैन्य पर दनादन गोलियाँ दाग़ रहा है। सेनानायक उस बालक की इस वीरता और निर्भीकता तथा साहस को देख कर, विस्मित हुआ और उसके कार्य्य की सराहना करता हुआ उसे अपने सेनाध्यक्ष इज़्ज़तपाशा के पास ले गया। उसका वृत्तान्त सुन, इज़्ज़तपाशा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके अचूक निशाने के अभ्यास को देख उसने उस बालक को सेना में भरती कर लिया। उसी दिन से हुसेन नूरी अपने अफ़सरों का कृपापात्र बन गया।

हुसेन नूरी ने कितनी ही बार अपने साहस और पौरुष का अच्छा परिचय दिया। एक दिन हुसेन नूरी बलगेरिया की सेना के एक सेनापति का सिर काट कर अपने सेनाध्यक्ष के पास लाया। शत्रुसेना का वह सेनापति तुर्कों की सेना में भेदिया बन कर, घुस आया

था। ऐसे एक भयङ्कर शत्रु के कटे सिर को देख, तुर्की सेना के सेनापति को बालक की कार्य्यतत्परता और उसके असम साहस को देख, बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उस बालक की तारीफ़ तुर्की के सुल्तान को लिख भेजी। सुल्तान ने हुसेन नूरी को चेडस (चालीस सौ का अफ़-सर) की उपाधि प्रदान की। एक बार युद्ध में जब उस बालक की जाँघ में घाव हो गया, तब वह इच्छा न रहते भी इलाज़ के लिये हैस-मक्जूई नामक नगर को भेजा गया। उसका कुशल-संवाद पाने को स्वयं सुल्तान हैस-मक्जूई गये। घाव के अच्छे हो जाने पर हुसेन नूरी वहाँ गया और सुल्तान से उसने भेंट की। वहाँ से फिर वह बालक रणक्षेत्र में गया।

प्रश्न

१—हुसेन नूरी का क्या प्रण था?
२—सुल्तान का कृपापात्र वह कैसे बना?

बत्तीसवाँ पाठ

एक राजा का स्वप्न

स्पर्शिनी—छूनेवाली। द्योतक—सूचक। रमणीक—सुन्दर।

सम्पन्न नगर का दीर्घसूत्र नामक एक राजा था। एक दिन रात के समय वह अपने महल में पलंग पर

लेटा हुआ था। शरद् की स्वच्छ चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई थी। नगर में आकाश-स्पर्शिनी अट्टालिकाएँ सुवर्ण कलशों से सुशोभित, मानों उस राजा के सुशासन की द्योतक थीं। राजा दीर्घसूत्र अपने प्रजाजनों की सुख-समृद्धि के विचारों में डूब कर सो गया। सोते समय उसने एक स्वप्न देखा।

स्वप्न में उस राजा ने देखा कि, वह कन्याकुमारी अन्तरीप के समीप सैर कर रहा है। इतने में उससे विशालकाय दो राक्षसों से भेंट हुई। राजा ने उनसे उनका परिचय पूँछा। अपना परिचय देते हुए उन राक्षसों ने राजा से कहा—हम छायाग्राहिणी सिंहिका नाम की राक्षसी के चर्मज पुत्र हैं। हम लोगों में से एक का नाम छायाग्राही और दूसरे का शब्दग्राही है। राजा दीर्घसूत्र को ऐसे ही लोगों की आवश्यकता थी। इसलिये उसने उन दोनों को अपनी राजधानी के मध्यभाग में एक ऐसे उत्तम स्थान पर टिका दिया, जहाँ आठों पहर चञ्चला लक्ष्मी विचरण किया करती थीं।

छायाग्राही और शब्दग्राही कुछ दिनों तक तो बड़े सुख से रहे। क्योंकि उनके लिये वहाँ खाने के सामान की कुछ कमी ही नहीं थी। उस नगर में अगणित जन बसते थे। अतएव वे लोग अघा अघा कर नरमाँस खाने लगे।

नित्य ही मनुष्यों का इस प्रकार नाश होते देख वहाँ के कुछ लोग एकत्र हो दीर्घसूत्र राजा के पास गये और अपनी दुःख कथा उसको सुनायी। परन्तु उसने उन लोगों की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। बल्कि उनको दोषी ठहरा उन्हींको दण्ड दिया। राजा की इस मनमानी से प्रजा में बड़ा असन्तोष फैला और प्रजाजन उस नगर को छोड़ धीरे धीरे दूसरे नगरों में जा बसे। कुछ ही दिनों बाद वह हरा भरा रमणीक नगर श्मशानवत् भयङ्कर हो गया।

नगर का ऐसा भयानक दृश्य देख राजकुमार ने जाकर अपने पिता से निवेदन किया—महाराज! मैं आज वायुयान पर सवार हो विचरण कर रहा था। घूमते फिरते जब मेरा वायुयान राजधानी के ऊपर आया तब नगर की दशा देख मुझे बड़ा दुःख हुआ। इतने ही में मैं क्या देखता हूँ कि, मेरे वायुयान का आगे चलना बंद हो गया है और वह भूमि की ओर खिंचा चला जा रहा है। बहुत चाहा कि, विमान को थामूँ, पर वह न थमा। अन्त में मैंने देखा कि, यह सब करतब उस छाया-ग्राही राक्षस का है। मेरा विमान उसके समीप गिरना ही चाहता था कि, शब्दग्राही की करामात से अब वह उसकी ओर खिंच पड़ा। इतने में कुशल यह हुई कि, वहाँ पर

विदेशी कुछ व्यापारी आ पहुँचे। उन्हें देख वे दोनों राक्षस मुझे छोड उन पर टूट पड़े और उनको मार कर खा डाला। इस प्रकार आज मैं काल के मुख में जाकर भी आपके पुण्य प्रताप से बच कर यहाँ आ सका हूँ।

राजकुमार की विपत्ति-कथा सुन, राजा दीर्घसूत्र इतना भयभीत हुआ कि, उसकी नींद टूटी और आँखें खोल वह उठ बैठा; किन्तु जागने पर भी उसके मन की दशा ज्यों की त्यों बनी रही। अन्त में उसने विचारा कि, आज के स्वप्न से मुझे अच्छी शिक्षा मिल गयी। मैं आज से सदैव अपनी प्रजा के कष्टों को अपना कष्ट समझ, उनको दूर करने के लिये सदा प्रस्तुत रहूँगा।

प्रश्न

१—राजा को अपने स्वप्न से क्या शिक्षा मिली?

२—इन शब्दों का अर्थ लिखो और अपने बनाये वाक्यों में प्रयोग करो—दीर्घसूत्र, छायाग्राही, शब्दग्राही, विपत्ति-कथा।

तैंतीसवाँ पाठ

अभिमान

अविवेक—अज्ञान । चर्च—लगाना । संचालक—चलाने वाला । आतंक—रोब ।

परम कृपालु परमेश्वर के बनाये ससार के सभी पदार्थ उत्तम हैं । किसी को अनभला कहना अविवेक है, क्योंकि विवेक से व्यवहार करने पर, सभी पदार्थों से लाभ होता है । अभिमान बड़ा सुन्दर शब्द है और ससार में अच्छी स्थिति का यह मूल है । पर यह चन्दन के समान सरल व्यवहार का पदार्थ नहीं है कि, चाहे जैसे चर्च लो, शीतलता और सुगन्ध दे और भद्दा भी न लगे । यह ताम्बूल के समान राजसी ठाट का है कि, चूना, कत्था आदि अपनी मात्रा के अनुसार ही रक्खे जावें और संभाल कर ही चाबाया जा सके, तभी स्वाद दे और शोभा भी बढ़ावे, अन्यथा मुख कष्ट पावेगा, कपड़े रंग जायँगे अथवा बैठे बैठाये एक स्वांग बन जायगा ।

राजकर्मचारी, सभा-संचालक, उत्सव, महोत्सव-कर्ता आदि अनेक लोग यदि अभिमान छोड़ कर कार्य करें, तो न तो उन उत्सवों में शोभा ही आवे और न उनके कार्य्य ही पूरे हों । नगरों में सड़कों के चौराहों पर पुलिस सिपाही यदि अपने स्थान का अभिमान छोड़ दें, तो

अपनी शोभा बिगाड़ कर वहाँ कितनी दुर्घटनाएँ उत्पन्न कर दें। राजसेना जिस समय सजी हुई सड़कों पर से जा रही हो और ऐंठ के साथ न हो, अभिमान छोड़े ढीली ढाली चली जाती हो, तो देखने वालों को भी वह भली न लगे और वह अपना आतङ्क भी गँवा दे। पाठशाले के विद्यार्थी यदि यह अभिमान न रखें कि, हम इतना पढ़ डालेंगे, ऐसा सुन्दर लिख डालेंगे तो पाठशाले में पैर ही न धरें। बिना अभिमान के सांसारिक उन्नति के समस्त बन्धन ही ढीले पड़ जाते हैं।

अभिमान धारण करने से लोग देश, भाषा, वेष, धर्म आदि की उन्नति कर सकते हैं। अभिमान बलवान और निर्बल सब पर अपना अधिकार जमाये रहता है। इन्हीं महाराज की महिमा है जो संसार के अनेक प्राणी जानते हैं कि, परमेश्वर ने डेढ़ बुद्धि भेजी है जिसमें से पूरी एक मेरे पास है और आधी में सारा ससार है। कुरूप के रूप, निर्धन के धन, निर्बल के बल ये तेजमूर्ति तो हैं, नहीं तो इन सब को धैर्य्य कौन प्रदान करे?

चन्दन और कोयला से भरी दो कटोरियाँ सदा इनके संग रहती हैं। कभी तो यह अपनी सेवा से प्रसन्न होते हैं और कभी त्याग से। सेवक अथवा त्यागी के मुँह में चन्दन अथवा कोयला लगाने में यह विलम्ब नहीं करते।

चन्दन कैसे सेवकों के मलते हैं सुनो। जो अपने देश अपने धर्म अपनी जाति की सेवा करता है अथवा धन, बल, विद्या, यश और अधिकार पाकर भी अपने आपको नहीं भूलता और जिसके मन में अपने से छोटों पर स्नेह बना रहता है, ऐसे लोगों के चन्दन मला जाता है। धन, बल, यश, विद्या और अधिकार पाकर जो अपने से छोटे लोगों पर अत्याचार करता है, उसके सिर पर कोयले की कटोरी उँडेली जाती है। अभिमान को अपने नाम का इतना ध्यान है कि, छोटों की सेवा से प्रसन्न यह उनको बड़ा बनाता है, परन्तु बड़ा होने पर फिर भी लोभवश जो इनका पीछा नहीं छोड़ता तो उसको यह काले मुख की लालगुञ्जा बनाये बिना नहीं छोड़ता।

जो बालक यह अभिमान रखता है कि, हमारा देश भारतवर्ष सब से अच्छा है, हमारा इतिहास सर्वश्रेष्ठ है, हमारे पूर्वज समस्त संसार में सभ्यता और कलाकौशल में बढ़े चढ़े थे, हमारी लिपि संसार की लिपियों से सर्वाधिक शुद्ध है और साथ ही यह अभिमान भी धारण करता है कि, हम पढ़ लिख कर, बल, बुद्धि विद्या बढ़ा कर अपनी बड़ाइयों को प्रत्यक्ष दिखाते रहेंगे, क्या वह बालक किसी दिन ईश्वर की कृपा से, भारत का जगमगाता एक रत्न न होगा ?

हम सब से पहले उठते हैं, सब से अधिक स्वच्छ हैं, सब से अधिक गुण सीखते हैं और सीख भी लेंगे। हमारे लिये कोई विषय कठिन नहीं है। हमारे रहते हमारे धर्म को, हमारे देश को कौन नीचा दिखा सकता है, हमको कभी कोई भयभीत नहीं कर सकता। बालको! ऐसा अभिमान रक्खो और महात्मा तुलसीदास के इस वचन पर भी ध्यान रक्खो।

अस अभिमान जांइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

प्रश्न

१—हमें किस बात का अभिमान करना चाहिये और किस बात का नहीं?
२—तुलसीदास के किस वचन पर ध्यान रखे?
३—सिपाही यदि अपने पद का अभिमान न रखे तो क्या हानि है?

चौंतीसवाँ पाठ

वीर बालक और वीर रमणी

विसर्जन—त्याग। वीराङ्गना—वीर स्त्री। बुभुक्षित—भूखा। हतोद्यम—उत्साह रहित। भार्य्या—स्त्री। भीषणता—भयङ्करता। संमिश्रण—मेल। भूतल—पृथ्वी। अवहेलना—उपेक्षा। विलुंठित—लोटते हुए।

जिस समय स्वाधीनताप्रिय राजपूत वीर, अपनी जन्मभूमि चित्तौड़ के उद्धार के लिये सहर्ष अपने प्राणों का युद्ध में विसर्जन कर रहे थे और उनका सेनायक राजपूत-कुल-गौरव जयमल्ल शत्रु के हाथ से वीरगति को प्राप्त हो चुका था और अकबर जैसा प्रबल शत्रु भारी सेना लिये दुर्ग को घेरे पड़ा था तथा गढ़ लेने पर प्रस्तुत था, उसी समय षोड़सवर्ष का फतहसिंह असीम उत्साह से स्वाधीनता की पताका उड़ाता वीर जयमल्ल के स्थान की पूर्ति करने के लिये युद्ध में शत्रु के सम्मुख आया था और देश तथा धर्म्म के लिये तीन वीराङ्गनाओं ने उसी युद्ध में अपने प्राण त्यागे थे।

पराक्रमी जयमल्ल स्वर्ग सिधार गये हैं। अधर्म्म युद्ध में अनेक पुरुषसिंह अनन्त निद्रा में सो चुके हैं। वीरभूमि वीरशून्या हो गयी है। ऐसे समय चित्तौड़ की रक्षा कौन करे? प्रचण्ड मुग़ल सम्राट् द्वार पर उपस्थित है। उस महा बुभुक्षित को युद्ध भिक्षा दे कौन हटावे? स्वाधीनता की लीलाभूमि पराधीनता की शृंखला में बँधना चाहती है, यह दुःसह दुःख कौन दूर करे? इस विचार में आज वीर-भूमि हताश और हतोद्यम है। इसी समय एक वीर बालक स्वर्ग से भी अधिक प्रतिष्ठित अपनी जन्मभूमि के हेतु, प्राण देने को प्रस्तुत हुआ है। जयमल्ल के शून्य स्थान को पूरा करने

वाला, साहस एवं पराक्रम में पुरुषसिंह, सोलह वर्ष की अवस्था वाला यह कौन है? फतहसिंह। बच्चे ने रणक्षेत्र में जाने की माता से आज्ञा माँगी और माता कर्मदेवी ने प्यारे पुत्र को रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दी। अब वह माता को प्रणाम कर अपनी प्यारी भार्य्या के पास गया, तब कमलावती ने भी प्राणाधिक स्वामी को सहर्ष विदा किया और बहिन कर्णावती ने भी जन्मभूमि की रक्षा के लिये अपने सहोदर को उत्तेजित किया।

माता, बहिन और स्त्री ही से क्या, मानों अपने जीवन ही से विदा हो, अद्वितीय वीर, सोलह वर्ष का चित्तौर का एक बालक असीम उत्साह के साथ पवित्र कार्य्य साधनार्थ रणभूमि में उपस्थित हुआ। अकबर ने अपनी सेना को दो भागों में बाँट कर, एक भाग को एक बड़े चतुर योद्धा के अधीन कर, युद्ध में भेजा; जिससे फ़तहसिंह से घोर घमासान युद्ध होने लगा। अकबर ने दूसरी ओर से एक बड़ी सेना के साथ स्वयं धावा किया और फ़तहसिंह को हानि पहुँचाना चाहा।

ठीक मध्याह्न का समय था। इसी समय अकबर की फ़ौज युद्धस्थल में तितर बितर हो गयी। वह फतहसिंह की ओर बढ़ रही थी कि, सहसा उसकी गति रुक गयी। सन्मुख एक सङ्कीर्ण पर्वतमार्ग था और उसके सामने दो

एक घने वृक्ष थे। उन वृक्षों के पीछे से दनादन गोलियाँ आ रही थीं। इससे मुग़ल सेना डगमगा रही थी। यह देख मुग़ल स्तम्भित होगये। क्योंकि उधर से लगातार गोलियाँ आ रही थीं और इन गोलियों की चोट से अनेक मुग़ल सिपाही, मर रहे थे।

अकबर ने विस्मित हो देखा कि, तीन वीराङ्गनायें पर्वत मार्ग का आश्रय लेकर सेना की गति रोक रही हैं। उनमें एक की अवस्था तो बड़ी है और दो खिलती हुई कमल कली के समान ललित किशोरी ही हैं। तीनों दुर्भेद्य कवच धारण किये है। तीनों घोड़ों पर चढ़ी हुई हैं। तीनों अश्वचालन में निपुण हैं। मधुरता के साथ भीषणता का संमिश्रण देख कर अकबर का हृदय विचलित हुआ। इन तीन वीराङ्गनाओं के पराक्रम से उसकी बहुसंख्यक सेना का गतिरोध हुआ और उनकी अचूक लक्ष्यवेधी गोलियों से बहुत सी सेना रणस्थल में काल का ग्रास हुई। यह देख वीर भारत का अद्वितीय सम्राट् अकबर क्षोभ और लज्जा से अधोमुख हो गया।

बिना विराम बिना विश्राम दोपहर से सन्ध्या तक युद्ध होता रहा। क्षण क्षण मे तीनों वीर ललनाओं की गोलियों की मार से मुगल सेना मरती खपती रही। यद्यपि अकबर के देखते देखते उसकी सेना को तीनों

देवियों ने बहुत हानि पहुँचायी, तथापि उनकी वीरता पर मोहित हो, वीरप्रकृति अकबर ने आज्ञा प्रचारित की कि, जो इन तीनों को जीवित पकड़ लावेगा, उसको बहुत सा द्रव्य पारितोषिक में दिया जावेगा। परन्तु उस समय सब युद्धोन्मत्त थे और उनके प्राणपखेरू अबाबील से उड़ रहे थे। बादशाह की इस आज्ञा का कुछ फल न हुआ। मुग़ल सेना ज्ञानशून्य होकर, युद्ध करने लगी और तीनों रमणी भी असीम साहस से उनके आक्रमण में बाधा डालने लगीं। सहसा कर्णवती का शरीर अवसन्न हुआ और वह वृक्ष से गिरते फूल की भाँति भूतल पर गिर पड़ी। कर्मदेवी ने दुलारी बेटी को सदा के लिये विदा करते हुए भी अपना हृदय पत्थर का कर लिया। वह अकातर भाव तथा अविचलित हृदय से शत्रु पर गोलियों के ओले बरसाने लगी। इस बीच में एक गोली कमलावती के बाएँ हाथ में लगी। परन्तु पीड़ा की अवहेलना कर, वह विपक्षियों पर गोलियाँ बरसाती ही रही। मुग़ल भी उन्मत्त थे और गोलियों की वृष्टि कर रहे थे। कर्मदेवी और कमलावती भी भूतलशायिनी हुईं।

फतहसिंह उस समय मुग़ल सेना को पराजित कर उक्त मार्ग के निकट आया और उसने अपनी पूज्या माता, प्राणाधिका सहोदरा तथा प्रियतमा स्त्री के शरीरों को

युद्धस्थल में विलुण्ठित देखा। उसने तुरन्त मुग़ल सेना के अनेक वीरों को मारा। इतने में माता और स्त्री का भी वाक्रोश होने लगा। फतहसिंह ने हाथ लंबा करके उनको उठा लिया। कमलावती ने धैर्य से प्राणकान्त की ओर देखा और आघात लगने पर भी वह पहले की भाँति अटल रही। देखते देखते साध्वी कमलावती प्राणेश्वर के बाहुमूल पर मस्तक रख कर, अनन्त निद्रा में सुख से सो गयी।

कर्मदेवी ने स्वदेश की स्वाधीनता के अर्थ प्यारे पुत्र को पुनः युद्ध की आज्ञा दे स्वर्ग को पयान किया। फतहसिंह ने एक क्षण भर चिन्ता की, फिर शीघ्र ही "हर हर" शब्द कर शत्रुओं के बीच प्रवेश किया और बहुत समय तक उनसे युद्ध कर तथा अनेक शत्रुओं को मार, वीर बालक फतहसिंह, जननी जन्मभूमि की गोद में सदा के लिये सो गया। दम्पति का पवित्र शरीर एक ही विमान पर बैठ स्वर्ग को गया और इस भूमि पर उनकी कीर्ति अक्षय्य होकर रह गयी।

प्रश्न

१—अकबर ने अपनी सेना में क्या आज्ञा प्रचारित की थी?

२—कमलावती कौन थी?

पैंतीसवाँ पाठ

वीका जी

प्राचीन—पुरानी। सैनिक—सिपाही। सीमा—हद्द। प्रस्थानित—रवाना। दिग्विजय—दिशाओं का जीतना। अधिकृत—कब्जा में पाये। अधीश्वर—मालिक। वश्यता—अधीनता।

वर्तमान वीकानेर नगर की नींव डालने वाले वीका जी राठौर क्षत्री थे। वे जोधा जी के पुत्र थे। जिस दिन प्राचीन राजधानी मंडौर को छोड़, जोधा जी मारवाड़ की नवीन राजधानी जोधपुर में आये, उस दिन उनके दूसरे राजकुमार वीका जी अपने चचा कपिल जी के साथ तीन सौ राठौर सैनिकों को साथ ले, पिता के राज्य की सीमा बढ़ाने के लिये, प्रस्थानित हुए थे।

इनके जाने के पहिले इनके भाई वीदा जी ने मोहिलों की प्राचीन निवासभूमि पर चढ़ाई कर, उस देश को सर कर लिया था। अपने भाई की इस विजयप्राप्ति से उत्साहित होकर, वीका जी भी दिग्विजय के लिये प्रस्थानित हुए थे।

सब से पहिले वीका जी ने जांगल वाले स्थान के रहने वाले सांखला नामक एक प्राचीन जाति पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के कारण वीका जी का परिचय पुंगल देश के भाटियों से हुआ।
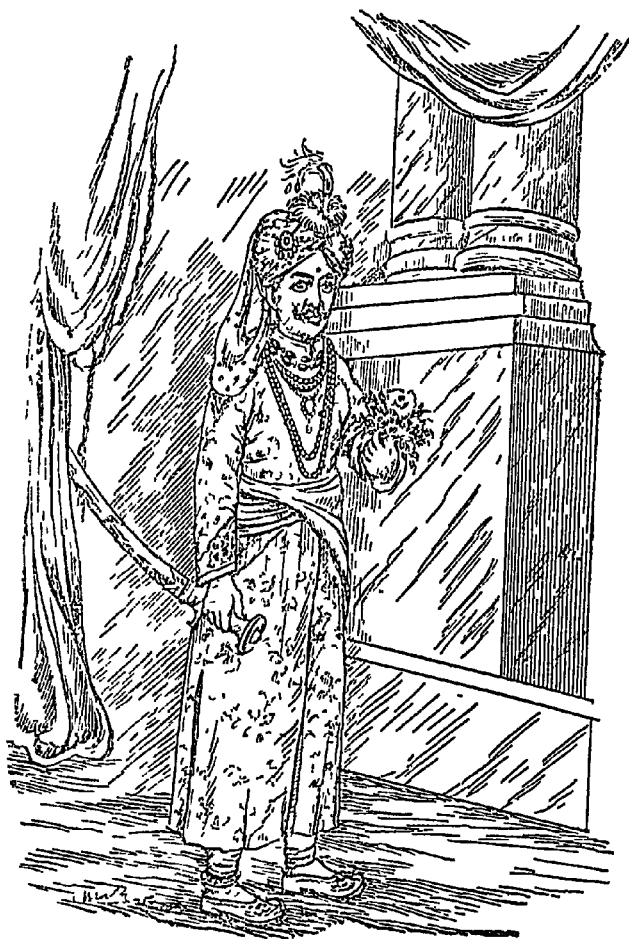
पुंगल जाति ने वीका जी को एक होनहार युवक जान

उनको अपनी बेटी ब्याह दी। बीका जी से अपनी स्वाधीनता बचाने का पुंगलपति ने यही एक उपाय किया। अतः बीका जी भाटियों के साथ किसी प्रकार का उपद्रव न कर, कोडपदेसर में एक क़िला बनवा कर रहने लगे और वहीं से धीरे धीरे अन्य प्रदेशों पर चढ़ाई कर अपने अधिकृत राज्य की सीमा बढ़ाने लगे। इस विजयी वीर राठौर ने देखते ही देखते उस प्रान्त में एक प्रभावशाली राज्य गठित किया। उस समय बीकानेर के अधिकांश भागों में जाट जाति के लोग बसते थे।

इस समय बीकानेर रियासत की बढ़ती इस तेज़ी से हो रही थी कि, बीका जी अपने पिता के वासस्थान मंडोर छोंडने के पीछे थोड़े ही दिनों में २३७० ग्रामों के अधीश्वर हो गये। इतने बड़े प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के लिये, बीका जी को बहुत बल नहीं लगाना पड़ा था। क्योंकि वहाँ के निवासियों ने बिना युद्ध ही के स्वेच्छापूर्वक बीका जी की वश्यता स्वीकार कर ली थी।

मारवाड़ के जिन भागों पर अधिकार करने के लिये बीका जी राजधानी से निकले थे, उस प्रान्त के जाटों तथा जोहियों की साधारण वृत्ति थी, वे गौएँ और भैंसे पालते थे और उनका दूध और भेड़ों का ऊन काट, उन्हें वहाँ के सारस्वत ब्राह्मणों के हाथ बेचा करते थे।

इस रोज़गार से उन्हें जो मिलता था उसीसे वे अपना निर्वाह करते थे।

एक नवीन राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से जाटों और जोहियों के अधिकृत देश पर अधिकार जमाने के लिये जिस समय बीका जी वीर गर्व के साथ आगे बढ़ रहे थे, उस समय उनके कार्य में सहायता देने वाले बहुत से सुयोग उपस्थित हो गये। इसलिये उन्होंने अनायास ही एक बड़े राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। अत्याचारी राजा के अत्याचारों से उत्पीडित प्रजा बीका जी को सहर्ष अपना नरपति मानने लगी।

इस प्रकार उत्साहित होने पर बीका जी पश्चिम की ओर आगे बढ़े। बीका जी ने उस ओर बागर देश पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। बीका जी एक नये राज्य की स्थापना कर, संवत् १५५१ वि० में इस लोक से सिधार गये। वे दो राजकुमार छोड़ गये थे। उनके नाम थे लूनकरन और गड़सी।

प्रश्न

१—बीका जी का भाटियों से क्या सम्बन्ध था?

२—बीका जी की वीरता के विषय में क्या जानते हो?

३—बीका जी का किस वंश में जन्म हुआ था?

छत्तीसवाँ पाठ

ज़िले का शासन-प्रबन्ध

उत्तीर्ण—पास। प्रचारित—जारी।

प्रत्येक सूबे में कई ज़िले होते हैं। ज़िले का सब से बड़ा अधिकारी कलक्टर होता है और वह प्रायः सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, इस पद पर नियुक्त किया जाता है। छोटे सूबों में इसे डिप्टी कमिश्नर कहते हैं। कलक्टर अपने ज़िले का शासन करता है और ज़िले में अन्य विभागों के अधिकारियों की भी देखभाल करता है। उसकी सहायता के लिये उसके अधीन और भी कई हाकिम होते हैं, जैसे असिस्टेंट कलक्टर या डिप्टी कलक्टर, सुपरिंटेंडेंट जेल, सुपरिंटेंडेंट पुलिस, इञ्जिनियर, सिविल सर्जन, डिप्युटी इन्स्पेक्टर मदारिस आदि। ये सब ज़िले के बड़े अफ़सर हैं। अंगरेज़ और हिन्दुस्तानी दोनों इन पदों को पाते हैं।

प्रत्येक ज़िले में कई तहसीलें होती हैं। तहसील का हाकिम तहसीलदार होता है। मुख्य कार्य्य तो उसका मालगुज़ारी लेना है, परन्तु माल और फ़ौजदारी के छोटे छोटे मुकद्दमे भी वह निपटाता है। इनकी अपीलें कलक्टर सुनता है। उसके अधीन-कर्म्मचारी नायब

तहसीलदार, कानूनगो और पटवारी वगैरः होते हैं। योग्य और सुशिक्षित लोग ही अब तहसीलदार होते हैं। ये अपनी तहसील में समय समय पर दौरा कर प्रजा के सुख दुःख की पूछताछ करते रहते हैं। तहसील के भीतर इनका भी अधिकार कलक्टर से कम नहीं है।

कलक्टर तहसीलदारों द्वारा मालगुज़ारी वसूल करवाता है। मुकदमों का फ़ैसला करता है। अपने नीचे काम करनेवाले सभी अफ़सरों के कामों को वह देखता है। वह ज़िले की और ज़िले के लोगों की दशा को जाँचता है। दौरा करता है। ज़िले में शान्ति रखता है। प्रतिवर्ष अपने प्रबन्ध की एक रिपोर्ट लिखकर उसे ऊपर के अधिकारियों के पास भेजनी पड़ती है।

कई ज़िलों की एक कमिश्नरी होती है, उसके अधिकारी को कमिश्नर कहते हैं। वह कलक्टरों के काम की निगरानी करता है। उनके फ़ैसले किये हुए मुकदमों की अपीलें सुनता है।

पुराने समय में गावों में पंचायतें होती थीं और वे गांव के झगड़े निपटाती थीं। वे खेतों से अन्न का कुछ भाग लेकर चौकीदार पटवारी रखती थीं। मुसलमानों की अमलदारी में यह प्रथा प्रचलित थी। सरकार ने उस प्रथा को तोड़ कर, चौकीदार, पटवारी आदि

का वेतन नियत कर दिया है। अब ये थाने और तहसील के अधीन रहते हैं। परन्तु अब फिर कई प्रान्तों में सरकार ने कुछ गाँवों में पंचायतें नियत कर दी है, जो दीवानी और फ़ौजदारी के छोटे छोटे मुकदमों को निपटा सकती हैं। इसमें उस गाँव ही के लोग पंच रहते हैं। यह एक प्रकार का स्थानीय स्वराज्य है। ऐसे ही शहर और ज़िले का प्रबन्ध म्यूनिसिपल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा होता है।

म्यूनिसिपलिटियों के मेम्बरों को म्यूनिसिपल कमिश्नर कहते है। इनमें कुछ सरकार के नियुक्त किये हुए मेंबर होते है और अधिकांश प्रजा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। मुख्य मुख्य काम तो सरकार की मजूरी ही से होते हैं परन्तु कुछ आवश्यक कार्य्य इनको भी करने का अधिकार है। जैसे नगर की सफ़ाई, रोशनी का प्रबन्ध, पानी का प्रबन्ध, प्रारम्भिक शिक्षा के लिये स्कूल, अस्पताल आदि का खोलना, आवश्यकता पडने पर प्रजा पर कोई नया कर लगाना आदि। इसी प्रकार ज़िले के बोर्ड भी है जो सडकों और स्कूलों आदि का प्रबन्ध ज़िले भर में वैसे ही करते हैं, जैसे म्यूनिसिपलिटियाँ नगरों में किया करती है।

प्रजा के जानमाल की रक्षा के लिये पुलिस विभाग है। इसका सब से बड़ा हाकिम इंस्पेक्टर-जनरल आफ़

पुलिस कहलाता है। इसके अधीन बहुत से अफ़सर रहते हैं। ज़िले में पुलिस का एक सुपरिंटेंडेंट होता है। असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट, इंस्पेक्टर और सब-इंस्पेक्टर उसके सहायक होते हैं। ज़िले में इनके बहुत से थाने होते हैं, जहाँ सब-इंस्पेक्टर और कुछ सिपाही रहते हैं। प्रत्येक गाँव में चौकीदार रहता है जो चोरी, बदमाशी आदि की इत्तिला थाने को करता रहता है।

अपराधियों को दण्ड देने के लिये ज़िलों में जेलें होती हैं। क़ैदियों से परिश्रम लेना, उनके भोजनादि का प्रबन्ध करना, जेल के अफसरों का कार्य्य है। जेलों में स्त्रियों के रहने का अलग प्रबन्ध रहता है और पुरुष अलग रखे जाते हैं। इसी प्रकार लड़के भी अलग रखे जाते हैं और उनको तरह तरह की कारीगरी सिखायी जाती है। डिस्ट्रिक्ट जज, सिविल सर्जन और ज़िला मजिस्ट्रेट क़ैदियों की तकलीफ़ें और आराम की देखभाल करते रहते हैं।

प्रश्न

१—म्युनिसिपल्टी के अधीन कौन कौन से काम हैं?

२—पुराने समय में नगरों का प्रबन्ध किस तरह होता था।

३—कमिश्नर किसे कहते हैं?

४—कलक्टर का क्या काम है?

सैंतीसवाँ पाठ

बुद्धि का मूल्य

वेतन—तनख्वाह। स्पर्धा—ईर्ष्या। पारस्परिक-

किसी व्यापारी महाजन के तीन नौकर थे। उनमें से एक को पाँच, दूसरे को पचीस और तीसरे को सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था। जिसका २५) मासिक वेतन था वह सौ रुपया मासिक वेतन पाने वाले से डाह किया करता था। वह कहता था कि, "काम तो मैं अधिक करता हूँ और वेतन यह अधिक पाता है।" जो पाँच रुपये मासिक वेतन पाता था, वह पचीस और सौ रुपये वेतन पाने वाले दोनों नौकरों से स्पर्धा किया करता था और कहा करता था कि, "काम तो दोनों से अधिक मैं करता हूँ और वेतन ये दोनों अधिक पाते हैं।"

उन दोनों की पारस्परिक ईर्ष्या से व्यापारी बहुत दुःखी रहा करता था और कहा करता था कि, ये अभागे अपनी योग्यता तो नहीं देखते, वेतन के लिये रोया करते हैं। एक दिन उन दोनों को उनकी भूल समझाने के लिये उस महाजन ने एक उपाय सोचा। उसने पाँच रुपये मासिक वेतन पाने वाले से कहा—"जाकर दर्याफ्त करो कि, वह जो नाव नदी में लगर डाले खड़ी है, कहाँ से आयी है और

कहाँ जायगी?" वह नौकर गया और दर्याफ्त करके लौट आया। उसने महाजन से कहा, "यह नाव अमुक नगर से आयी है और अमुक नगर को जायगी।" इस पर महाजन ने उससे पूँछा–"उस नाव में क्या लदा है?" वह बोला– "यह तो मैंने नहीं पूँछा।" यह सुन उसने पचीस रुपये मासिक वेतन पाने वाले कर्म्मचारी से कहा, "अच्छा तुम जाकर दर्याफ्त करो।" वह दर्याफ्त करके लौट आया और कहने लगा—"अमुक नगर का जो अमुक नाम महाजन है उसने ही वह नाव भर कर भेजी है। वह नाव उसीकी है उसमें अमुक माल लदा है और वह अमुक स्थान को जायगी।" मालिक ने पूँछा–"केवल एक ही रकम का माल है या कई प्रकार का?" नौकर ने कहा– "यह तो मैंने नहीं पूँछा।" तब व्यापारी ने सौ रुपये मासिक वेतन पाने वाले कर्म्मचारी को भेजा।

जब वह नाव के समीप पहुँचा, तब नाव के अधिकारी से राम राम कर वह उसके पास बैठ गया और धीरे धीरे उसने उस नाव का सारा हाल दर्याफ्त किया। उसने पूँछा– "नाव कहाँ से रवाना हुई, कब रवाना हुई, कहाँ जायगी? उसमें क्या क्या माल है? वह किस भाव से ख़रीदा गया? दिसावर में क्या पड़ता पड़ेगा? यहाँ तक आने में क्या ख़र्च बैठा है? यदि कोई बीच ही में माल ख़रीदा चाहे तो क्या

माल बिक सकता है ?" नाव के अधिकारी ने उक्त प्रश्नों के यथोचित उत्तर दे दिये। उसने अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कहा—"दिसावर ही में ले जाकर माल बेचने का हमारा कोई विशेष नियम नहीं है। जहाँ हमें नफ़ा मिले हम वहीं माल बेंच सकते हैं।" इस पर उसने नाव का भाव ताव तै कर डाला।

इतने में एक दूसरा व्यापारी वहाँ गया और नाव वाले से नाव के माल का भाव ठहराना चाहा। इस पर नाव के मालिक ने उसे सौ रुपये मासिक पाने वाले कर्मचारी की ओर इशारा कर कहा—"माल तो हम इनके हाथ बेच चुके। अब आप उनसे ही बातचीत करें। वह व्यापारी ग़रज़ू था, अतः उसने सवाई दर से उस माल को ख़रीद लिया। नौकर को इस सौदे में पचीस हज़ार रुपये का मुनाफ़ा हुआ और इतने रुपयों की हुंडी लाकर उसने अपने मालिक के सामने रख दी।

इस पर मालिक ने पाँच रुपये और पचीस रुपये मासिक वेतन पाने वाले दोनों कर्म्मचारियों को बतलाया कि, इसलिये इसे मैं १००) मासिक देता हूँ। आज से तुम आपस में ईर्ष्या द्वेष करना छोड़ दो। यदि इस पर भी न मानोगे तो तुम्हारा खाता ड्योढ़ा* कर दिया जावेगा।

---

* नौकरी से अलग कर दिये जाओगे।

यह सुन वे दोनों लज्जित हुए और उस दिन से उन दोनों ने परस्पर डाह करना छोड़ दिया।

प्रश्न

१—१००) मासिक वेतन पाने वाले की योग्यता कैसे प्रमाणित हुई ?

२—नौकरों की ईर्ष्या दूर करने का मालिक ने क्या उपाय सोचा ?

अड़तीसवाँ पाठ

विचित्र वृक्ष

स्वादिष्ट—ज़ायकेदार। पुष्टिकारक—बल बढ़ाने वाला। नवनीत—मक्खन। तृषा—प्यास।

दक्षिण अमेरिका के सघन वनों में, आन्दिस पर्वत के नीचे गोवृक्ष नामक एक विचित्र वृक्ष होता है। इसे सब से पहले हम्बोल्ट साहब ने खोज निकाला था।

इस विचित्र वृक्ष के पत्ते चमड़े से होते हैं और उनमें से एक प्रकार का सफ़ेद रंग का रस निकलता है, जिसका स्वाद ठीक दूध सा होता है। इसी लिये इस वृक्ष का नाम गोवृक्ष रक्खा गया है। सूर्योदय होते ही बड़े बड़े बर्तन हाथ में लिये स्त्रियाँ गोवृक्ष के पास जाती हैं और पेड़ की छाल को छील, उसमें एक छोटासा छेद कर देती

हैं, जिससे उस वृक्ष का बहुतसा रस निकल कर, उनके बरतनों में भर जाता है। यह दूध बड़ा स्वादिष्ट और पुष्टि-कारक होता है।

नवनीत वृक्ष हिन्दुस्तान और अफ्रीका के किसी किसी भाग में पाये जाते हैं। उनके बीजों को उबालने पर उनमें से एक प्रकार का उत्तम मक्खन निकलता है। यह निमक मिला कर रखने से गर्म देशों में महीनों तक नहीं बिगड़ता।

दक्षिण-समुद्र के द्वीपों में एक विचित्र वृक्ष देखा गया है। उसका नाम "रोटी-फल" है। योरप में इस वृक्ष का वृत्तान्त सब से प्रथम कैपटिन कुक ने प्रकाशित किया था। इस वृक्ष के फल हरे रंग के और तरबूज के समान बड़े होते हैं। फलों को पहले भूंजते हैं, भूंजने से वे फल सफ़ेद नर्म और सुस्वादु हो जाते हैं।

मैडेगास्कर द्वीप में एक और विचित्र वृक्ष का पता लगा है। यह वृक्ष दो हाथ से अधिक ऊँचा होता है और उसके पत्ते चार से छः फ़ुट तक लंबे होते हैं। उस पेड़ के फल बड़े स्वादिष्ट होते हैं, पर उसकी ख्याति का कारण उसका स्वादिष्ट फल नहीं है। चाहे कितनी गर्मी पड़े, पर उस वृक्ष में प्रचुर साफ़ और ताज़ा पानी

बना रहता है। वह वृक्ष वहाँ के रेतीले मैदानों में कुओं का काम देता है। जो लोग उन वृक्षों के पास काम करते हैं, उन्हें प्यास लगने पर कुएँ, तालाब या नदी के शरण में नहीं जाना पड़ता। वे उस वृक्ष के जल ही से तृषा बुझा लेते हैं।

उस पेड़ का नाम राज-मिस्त्री का वृक्ष है। उसी वृक्ष के चौड़े और लंबे पत्तों से मैडगास्कर के अनेक घरों की छतें पाटी जाती हैं। छाल कूट कर फ़र्श बनाया जाता है और पत्तों से थाली, चम्मच आदि का भी काम लिया जाता है।

प्रश्न

१—नवनीत वृक्ष किसे कहते हैं?

२—रोटी-फल के बारे में क्या जानते हैं?

३—गोवृक्ष से दूध कैसे निकाला जाता है?

४—राजगिरी वृक्ष किस काम में आता है?

उन्तालीसवाँ पाठ

दमयन्ती

भुवन-मोहिनी—संसार को मोहने वाली। प्रख्यात—मशहूर। सर्वगुणविशिष्ट—सब गुणों से युक्त। अनाहार—बिना भोजन। आत्मघात—आत्महत्या। चन्द्रवदनी—चन्द्रमा के समान मुँह वाली। गजगामिनी—हाथी के समान चलने वाली। दाडिम—अनार। व्याधा—बहेलिया। अनुसंधान—पता। विथा—दुःख।

विदर्भ नगर के राजा भीमसेन की कन्या भुवन-मोहिनी दमयन्ती का रूपगुण सारे भारतवर्ष में प्रख्यात हो गया था। निषध देश के राजा वीरसेन के पुत्र सर्वगुण-

विशिष्ट अति सुशील धार्मिक नल से, स्वयंवर में जयमाल देकर विवाह किया। वारह वर्ष तक दोनों का सुख चैन से दिन कटता रहा, इस वीच में उनके एक लड़की और एक लड़का भी हो गया। यद्यपि मनु जी ने धर्म्मशास्त्र में पाँसा खेलना मना किया है, तथापि नल को इसका दुर्व्यसन था। वह अपने छोटे भाई पुष्कर के साथ खेला करता था। यहाँ तक कि, दाँव लगाते लगाते वह सारा राज हार गया। सिवाय एक धोती के कुछ भी पास वाकी न रहा। दमयन्ती को साथ लेकर वह वाहर निकला। लड़का लड़की को दमयन्ती ने पहले ही से अपने वाप के घर भेज दिया था। पुष्कर ने सारे राज्य में डौंडी फिरवा दी कि, नल को जो कोई अपने घर में घुसने देवेगा, वह जान से हाथ धोवेगा। राजा नल को तीन दिन रात अनाहार के वीत गये। चौथे दिन नदी के किनारे जाके, चुल्लू से पानी पिया और जंगल में जाके, फलफूल कन्द मूल से रानी समेत गुज़ारा किया। नल ने दमयन्ती को वहुत समझाया कि, तुमसी कोमल और सुकुमार स्त्रियों का ऐसी विपत्ति में कदापि साथ रहना नहीं हो सकता कि, तुम अपने पिता के घर जा के विदर्भनगर में दिन काटो। जो ईश्वर अनुकूल होगा तो फिर भी मिल रहेंगे। दमयन्ती यह वात सुन के रोने लगी और वोली कि, हे महाराज!

हे स्वामी ! हे प्रियतम ! ऐसा कठोर वचन आपके मुख-पंकज से क्यों कर निकला ? क्या आप बिना मैं पिता के घर में यहाँ से अधिक सुखी रहूँगी ? क्या खाना पहिनना आपके दर्शन से अधिक सुखदायी है ? जो आप मुझे त्याग भी करें, तो मैं आपको कदापि नहीं त्याग सकती। जो आप फिर कभी ऐसा वचन मुख से निकालेंगे तो मैं आत्मघात करूँगी। यह कह के, अपने हाथों को राजा के गले का हार बना, एक वृक्ष के नीचे सो गई। राजा ने अपने जी में सोचा कि, जो स्त्री राजमन्दिर में फूलों की सेज पर भी डर के पैर रखती थी, वह भला इस अगम्य जंगल में काँटों के ऊपर क्योंकर चल सकेगी। मैं सब कुछ सह लूँगा पर अपनी प्राणप्यारी को इस विपत्ति में क्योंकर देख सकूँगा। यह मुझे छोड़ने पर कभी राज़ी न होगी, पर जो मैं इसे यहाँ सोती हुई छोड़ दूँ, तो किसी न किसी तरह अपने पिता के घर पहुँच जावेगी। निदान, वह यह सोच विचार के उस चन्द्रवदनी गजगामिनी को उसी वृक्ष तले छोड़ और आप एक तरफ़ को चला। नल के पास कपड़ा पहिनने को न था। एक चिड़िया पकड़ने को उस पर धोती डाली थी; वह चिड़िया धोती समेत उड़ भागी। जब विपत्ति के दिन आते हैं, तब सारे सामान ऐसे ही बन जाते हैं। निदान, राजा नल ने चलते समय दमयन्ती

की साड़ी काट कर आधी उसमें से अपने पहनने को ली और आधी उसके बदन पर रहने दी। इस मनुष्य का मन भी विधाता ने किस प्रकार का रचा है कि, जब नर्म होता है तब मोम से भी अधिक पिघलता है और जब कड़ा होता है, तब वज्र को भी मात करता है। नल के जी का हाल उस समय नल ही जानता था। थोड़ी थोड़ी दूर जाकर दमयन्ती को देखने को वह फिर लैाट आता था। निदान, जब नल दूर निकल गया और दमयन्ती की आँख खुली, तब उसे अपने पास न पाकर सिर धुनने और हाथ पटकने लगी। मूर्छा खाकर ज़मीन पर गिर पड़ी, आँसुओं की धारा बहाने लगी। पुकार पुकार करके रोने लगी कि, हे प्राणनाथ! मुझ बन्दी ने क्या अपराध किया था जो तुमने इस ढब जंगल में अकेला छोड़ा। उस अपनी प्रतिज्ञा को याद करो, जो ब्याह के समय की थी कि, जीते जी तुझसे जुदा न होंगे और शीघ्र अपने मुखड़े के प्रकाश से मेरे मन की कली को खिलाओ। उस काल उस अबला की यह दशा देख के मानों पत्थर का हिया भी दाडिम सा दरकता था और मृग पक्षी का कलेजा भी फटा जाता था। जब दमयन्ती अपने पति को पुकारती पुकारती सघन वन में हर तरफ़ घूमने लगी, तब अचानक एक अजगर ने उसे आ घेरा। चाहता ही

था कि, मुँह चलावे, पर दमयन्ती का चिल्लाना सुन कर जो एक व्याधा उधर को आ गया था, उसने एक ही तीर में इस अजगर का काम तमाम किया। वह व्याधा दमयन्ती के लिये अजगर से भी अधिक दुःखदायी हुआ और मोह के वश में पड कर उस सती का सतधर्म नाश करना चाहा। दमयन्ती बहुत गिडगिड़ाई और व्याधे को पिता कह के सारी धर्म की बात समझायी, पर जब देखा यह नीच दुर्बुद्धि किसी ढब नहीं मानता, तो व्याकुल हो अन्तर्यामी घट-घट-निवासी जगदीश्वर से यों प्रार्थना की कि, हे दीनबन्धु! दीनानाथ! दीनहितकारी! यदि मैं सती हूँ और यह दुष्ट मेरा सत्य भंग करना चाहता है तो इसी समय यह भस्म हो जाय। क्या महिमा है उस अपरम्पार करुणानिधान की कि, व्याधे ने जो इस बात से क्रोध में आके दमयन्ती पर तीर चलाया, आप ही उस तीर से बिध गया और फिर साँस न ली। दमयन्ती रोती बिलखती, जंगल पहाड़ों को छानती, सिंह और हाथियों से बचती, सौ सौ आफ़तें झेलती मुनि लोग और बंजारों से पता लगाती, सुबाहु नगर में पहुँची और वहाँ के राजा की रानी के पास दासी की तरह रहने लगी। वहाँ से उसके पिता के भेजे हुए ब्राह्मण ढूँढ़ खोज कर विदर्भनगर को ले गये। राजा नल अपनी प्राणप्यारी

के विरह में शोकाकुल होकर घूमता फिरता अयोध्या में आ निकला और बाहुक के नाम से वहाँ राजा ऋतुपर्ण का सारथी बना। दमयन्ती के बाप ने नल के ढूँढ़ने को नगर नगर ब्राह्मण भेज दिये थे। उनमें से सुदेव नाम ब्राह्मण अयोध्या से यह समाचार लाया कि, बाहुक नाम एक सारथी जो राजा ऋतुपर्ण के यहाँ है, दमयन्ती का नाम सुनते ही आँखों में आँसू भर लाया, पर उसने अपने को सिवाय सारथी होने के और कुछ न बतलाया। दमयन्ती यह सुनते ही ताड़ गई कि, हो न हो वह मेरा ही स्वामी राजा नल है और अपने बाप से उसके बुलाने की प्रार्थना की, पर जब वह भीमसेन के बुलाने से न आया और सारे उपाय निष्फल हुए; तब दमयन्ती ने अपने बाप से कह करके राजा ऋतुपर्ण को यह लिखाया कि, नल के मिलने की अब कुछ आशा न रहने से दमयन्ती का दूसरा स्वयम्बर रचा जायगा; सो आप कृपा करके शीघ्र आइये और दिन स्वयम्बर का ऐसा समीप ठहराया कि, बिना राजा नल के हाँके कोई घोड़ा उस अल्पकाल में अयोध्या से विदर्भ तक न पहुँच सके। राजा नल का रथ हाँकना प्रख्यात था। राजा ऋतुपर्ण बहुत घबराया कि, इतने थोड़े अर्से में क्योंकर विदर्भ पहुँच सकेंगे, पर नल ने कहा,

महाराज ! आप चिन्ता न कीजिये, मैं आपको स्वयम्बर के दिन से पहले वहाँ पहुँचा दूँगा; निदान ऐसा ही हुआ। राजा भीमसेन ने ऋतुपर्ण का बड़ा सन्मान किया; परन्तु वहाँ स्वयम्बर की कुछ रचना और किसी दूसरे राजा को न देख कर, यह अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। नल घोड़े को घुड़साल में बाँध कर भीमसेन के सारथी के पास खाट पर पड़ गया। दमयन्ती अयोध्यापति के पहुँचने के समाचार पाकर बहुत घबराई और मन में प्रतिज्ञा की कि, अब जो नल से मिलाप न हुआ तो आज अवश्य अपने तन को अनल में दाह करूँगी। निदान, अपनी सखी केशनी को ऋतुपर्ण के सारथी का अनुसंधान लेने को घुड़साल में भेजा। केशिनी ने जाकर नल से कहा कि, दमयन्ती आपका नाम और पता ठिकाना पूछती है। नल ने कहा कि, मेरा नाम बाहुक है, मैं अयोध्या के राजा का सारथी हूँ। दमयन्ती का स्वयम्बर आज ही सुन के मारोमार घोड़ों को यहाँ लाया हूँ, पर बड़े ही अचरज की बात है कि, राजा नल की रानी दमयन्ती ऐसी पतिव्रता सती होकर दूसरे पति की इच्छा करे। सच है—"जब मनुष्य के बुरे दिन आते हैं तो स्त्री पुत्र भी अपने नहीं रहते। केशिनी बोली, हे बाहो ! तुम कुछ नल का भी पता ठिकाना बता सकते हो ? देखो तो उन्होंने कैसी कठिनाई

और निर्दयता का काम किया कि, अबला बाला को अकेली जंगल में शेर, हाथी और रीछ अजगरों के साथ छोड़ कर अपना रास्ता लिया। दमयन्ती ने उनके विरह में अन्न जल और सेज का त्याग करके केवल उन्हींके नामस्मरण का अवलंबन किया है। दमयन्ती की विथा सुन कर नल की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। बोला कि, स्त्री अपने पति से चाहे जितना कष्ट पावे पर उसे औरों के सामने उसकी निन्दा करनी कदापि उचित नहीं। जो नल राजा दमयन्ती को वहाँ जंगल में न छोड़ जाता तो उसका प्राण ही बचना कठिन था और सिवाय इसके जो नल ने कोई निर्दयता का भी काम किया हो, तो दमयन्ती को उस पर कोप न करना चाहिये। जो आदमी कल राजा था और आज पाँव में पहनने का जूता नहीं रखता उसकी मति यदि ठिकाने न रहे तो क्या अचरज है। इतना कह के नल फिर रोने लगा। केशिनी ने रनवास में जाकर यह सब हाल दमयन्ती से कहा, दमयन्ती ने सुनते ही जान लिया कि, वह वाहुक नहीं, यह मेरा भर्त्ता नल ही है। केशिनी से कहा तू फिर उसके पास जा और देख आ कि, वह क्या कर रहा है और अब की बार मेरे लड़के लड़की को भी लेती जा। नल अपने बेटा बेटी को देख के आँसुओं की धारा को न रोक सका। दोनों को

छाती से लगा लिया और कहने लगा, मेरे भी ऐसे ही बेटा बेटी हैं, पर बहुत दिनों से देखा नहीं। इन्हे देख के वे मुझे याद आ गये। अब इन्हें इनकी माँ के पास लेजा, बेचारे आज नल के लड़के हैं, कल किसी दूसरे के हो जायँगे। नारी ही धन्य है। आज एक छोड़ कल दूसरा कर लिया, परन्तु रात बीते तो मैं भी यह तमाशा देखूँगा कि, नल राजा की सती रानी दमयन्ती किस प्रकार दूसरा भर्त्ता करती है। केशिनी ने आकर दमयन्ती से सारी बातें ज्योंकी त्यों कह दीं और बोली कि, यह तो दैवी पुरुष है, जितनी सामग्री हमारे यहाँ से राजा ऋतुपर्ण को दी गई थी, इसने देखते ही देखते सब रींध के तैयार कर ली। दमयन्ती ने कहा, जा, जो कुछ उसने रींधा हो थोड़ा थोड़ा सब मेरे पास ले आ। केशिनी ले आई। दमयन्ती ने चखा तो उसमें वही स्वाद पाया जो राजा नल के बनाये भोजन में पाती थी। राजा नल इस काम में बड़ा ही निपुण था, दमयन्ती ने अपनी माँ से जाके कहा कि, मेरा स्वामी आ गया। मुझे उसके पास घुड़साल में जाने की आज्ञा दीजिये। वह इस संवाद को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई और दमयन्ती को घुड़साल में जाने की आज्ञा दी। वह अपने लड़का लड़की को साथ लिये नल के पास घुड़साल में गई। नल को सारथी के रूप में तनछीन, मुखमलीन

देख के अत्यन्त शोकाकुल हुई। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। बोली, हे प्राणनाथ! यह कौन सी नीति थी जो आपने मुझ निरपराधिनी अबला को अकेली उस जंगल में छोड़ा। नल ने लज्जित होकर उत्तर दिया कि, हे प्राणप्यारी! क्या मैं तुमको कभी छोड़ सकता था, परन्तु जिस विपरीत बुद्धि ने मुझसे मेरा राज छुड़ा लिया, उसीने तुम्हें भी मुझसे बिछुड़ाया, पर जो कुछ तुम्हारे दारुण विरह का दुःसह दुःख मैंने सहा है, वह मेरा शरीर कहेगा। जो हो, पतिव्रता स्त्री अपने पति का दोष देख कर भी उसकी निन्दा नहीं करती है; पर तुम तो कल किसी दूसरे की हो जाओगी। तुम्हें इन बखेड़ों से अब क्या काम है? दमयन्ती ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि, महाराज राजा ऋतुपर्ण को केवल आपके बुलाने के वास्ते ही स्वयम्बर का पत्र लिखवाया था और आप देखिये कि, उसके सिवाय और कोई भी यहाँ नहीं आया। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि, मैं जो आज आपसे न मिलूँ तो आज मैं जल मरूँ। निदान, यह बात धीरे धीरे राजा भीमसेन और ऋतुपर्ण तक पहुँची। वे इस बात के सुनने से परम आनन्दित हुए। राजा ऋतुपर्ण ने नल से कहा कि, महाराज, मैंने आपको न जान कर बड़ी अनीति की। मेरा कहा सुना और भूलचूक आप सब क्षमा कीजिये।

राजा ऋतुपर्ण तो अयोध्या की ओर सिधारा और भीमसेन ने नल से यह कहा कि, अभी निषध देश में आपका जाना उचित नहीं। आप मेरा राजपाट लीजिये, इसी जगह रहिये, पर जब नल ने सुसराल में रहना स्वीकार न किया और अपने देश में जाने का हठ किया, तब राजा भीमसेन से एक रथ, सोलह हाथी, पाँच सौ घोड़े और छः सौ प्यादे साथ लेकर निषधदेश में जाकर अपने भाई पुष्कर से यों कहा कि, आओ एक बेर और भी तुम्हारे साथ पाँसा खेलें, जो मैं हारूँ तो तुम्हारा दास होकर रहूँ और जो तुम हारो तो मैं अपना सारा गया हुआ राज तुमसे फेरलूँ। भगवान की करनी, उस बाज़ी में नल की जीत हुई। पुष्कर मारे डर के बेत की तरह काँपने लगा, परन्तु नल ने समझाया और कहा कि, भाई! इसमें तुम्हारा क्या अपराध है। यह सब अपने दिनों का फेर है, तुम बेखटके रहो। फिर नल ने दमयन्ती को भी बेटा बेटी समेत विदर्भनगर से अपने पास बुलवा लिया और बहुत काल तक सुखचैन से राज करता रहा। जैसा दिन इनका फिरा वैसा भगवान सब का फेरे।

राजा शिवप्रसाद, सी० एस० आई० के

वामामनोरंजन से।

प्रश्न

१—नल का राज कैसे गया? पुनः उन्होंने कैसे पाया?

२—दमयन्ती को वन में क्यों छोड़ा?

३—दमयन्ती अपने पिता के घर कैसे पहुँची?

४—दमयन्ती ने नल को कैसे बुलाया और यह कैसे निश्चय किया कि यही नल है?

चालीसवाँ पाठ

वालरस जन्तु

अनायास—सहज में। आकृति—चेहरा। हताश—निराश। भीमाकृति—डरावनी सूरत।

उत्तरीय ध्रुव के विचित्र जीवधारियों में वालरस सब से विचित्र एक जीव है। वहाँ का यही सब से बड़ा जीव है। लोग इसका परिचय कई नामों से देते हैं। कोई इसे "समुद्री घोड़ा" कहता है, कोई समुद्री बैल और कोई इसे "ध्रुवप्रदेश का सिंह" बतलाता है। हमारी समझ में यदि हम इसे आर्टिक महासागर का हाथी कहें तो भी अनुचित न होगा। यह पंद्रह फीट से लेकर बीस बाइस फीट लंबा और इससे १६ फीट तक मोटा होता है। इसका शरीर पीपे की तरह गोलाकार होता है। इसका वज़न तीस से चालीस मन तक पाया गया है। इसके मुँह

के चारों ओर दाढ़ी की जगह मोटे और घने वाल होते हैं। साथ ही हाथियों जैसे दो बड़े बड़े दाँत भी। इन दाँतों की लंबाई पचीस से लेकर चालीस इंच तक होती है। इसके और हाथी के दाँतों में अन्तर यह होता है कि, हाथियों के दाँत तो ऊपर को और इसके दाँत नीचे को झुके रहते हैं। दाँतों के नीचे की ओर झुके रहने से इसे बड़ी सहायता मिलती है। यहाँ तक कि, इन दाँतों के सहारे वह बड़ी बड़ी ऊँची वर्फ़ की चट्टानों पर सहज में चढ़ जाता है। जिन चट्टानों पर अनेक यत्न करने पर भी मनुष्य नहीं चढ़ सकता, उन चट्टानों पर यह अपने दाँतों की सहायता से अनायस ही घूमा करता है।

इसका चमड़ा प्रायः एक इंच मोटा होता है और चमड़े के ऊपर घने मोटे वाल होते हैं। चमड़े के नीचे चर्वी की एक मोटी तह होती है। इसका सिर बड़ा, मोटा और चपटा होता है। इसीसे उसका थूथन चौड़ा होता है और उसके चारों ओर सेही के काँटों के समान मोटे तथा कड़े वाल होते हैं। इनसे इसकी आकृति की भयङ्करता और भी अधिक बढ़ जाती है।

वालरस अधिकतर समुद्र ही में रहता है। इसे अपने भोजन की सामग्री प्राप्त करने के लिये समुद्र के तल तक

जाना पड़ता है। वहाँ से इसे कई प्रकार की वनस्पतियाँ कौड़ी तथा घोंघे मिल जाते हैं। जाड़ों में जब आर्कटिक सागर जम कर वर्फ़ बन जाता है, तब इसे अपने रहने के लिये गड्ढा बना लेना पड़ता है। इस गढ़े में यह जब तक रहता है, तब तक इसके शरीर की गर्मी से वहाँ का जल जमने नहीं पाता। यदि वहाँ का पानी अत्यधिक शीत के कारण जम भी जाय तो वालरस अपने दाँतों से वहाँ की वर्फ़ को तोड़ डालता है। इस गढ़े में जाड़े की ऋतु में वालरस बड़ा प्रसन्न रहता है। वालरस जब चाहता है, तब समुद्र में चक्कर लगाता है और जब चाहता है तब वर्फ़ की हवा खाता है। किन्तु जब यह गढ़े से निकल बाहर वर्फ़ की चट्टान पर बैठता है; तब बैठे ही बैठे यह सो जाता है। अगर देर तक सोता रहा तो इसका गढ़े का जल जम कर वर्फ़ बन जाता है। पतली वर्फ़ की तह को तो यह दाँतों से तोड़ डालता है, किन्तु आठ इंच से मोटी वर्फ़ इसके तोड़े नहीं टूटती। तब यह हताश हो खुले समुद्र की खोज में भटकता फिरता है। यदि यह खुले समुद्र में पहुँच गया; तब तो ठीक नहीं तो वर्फ़ पर पड़ा पड़ा वह थोड़े ही दिनों में मर जाता है।

वालरस विशालकाय और भीमआकृति का होने पर भी स्वयं बड़ा डरपोक जानवर है। इसकी सूंघने और

सुनने की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। मीलों की दूरी से जहाज़ के धुएँ को सूँघ कर यह भाग जाता है। जब कोई शिकारी इन पर आक्रमण करता है, तब यह आक्रमणकारी का सामना तो करता है, पर भाग जाने का विचार तब भी उसके मन से दूर नहीं होता। ऐस्किमो जाति के लोग वालरस का शिकार खेला करते हैं। जिस भाले से वे लोग इसका शिकार करते हैं, वह इसीकी हड्डी का होता है।

प्रश्न

१—वालरस के कितने नाम हैं?
२—जब आर्टिकसागर जम जाता है तब यह कहाँ रहता है?
३—यह स्वभाव का कैसा होता है?
४—हाथी के दाँतो और इसके दाँतों में क्या अन्तर है?

एकतालीसवाँ पाठ

पितृआज्ञाकारी परशुराम

प्रथा—रीति। वशवर्ती—अधीन। दारुण—विकट। निद्रागत—सोये हुए। आखेट—शिकार। समिधा—हवन की सामग्री। अपहरण—हर ले जाना।

हिन्दू बालकों में कदाचित् ही कोई ऐसा हो, जिसने परशुराम जी का नाम न सुना हो; किन्तु ऐसे अनेक

निकलेंगे, जो उनके वृत्तान्त से अपरिचित होंगे। अतएव इस पाठ में परशुराम जी का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा जाता है।

महाराज परशुराम जमदग्नि के पुत्र थे। यद्यपि जमदग्नि जाति के ब्राह्मण थे, तथापि उन्होंने अपना विवाह तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार राजा प्रसेनजित की कन्या रेणुका के साथ किया था। जमदग्नि के इस राज-कुमारी के गर्भ से पाँच बालक उत्पन्न हुए। इन पाँचों में सब से छोटे का नाम राम था। राम अपने पास सदा परशु अर्थात् एक प्रकार की कुल्हाड़ी रूपी अस्त्र रखते थे। इसी लिये उनका नाम परशुराम पड़ गया था। परशुराम बड़े पितृभक्त और पितृआज्ञाकारी थे। वे कभी अपने पिता का कहना नहीं टालते थे। साथ ही अपने अन्य बड़े भाइयों की अपेक्षा परशुराम विशेष तेजस्वी और पराक्रमी भी थे।

एक दिन की बात है, उनकी माता रेणुका नदी किनारे जल लाने गयीं। वहाँ उसे कारणविशेषवश आवश्यकता से अधिक विलम्ब हो गया। विलम्ब के कारण कर्मनिष्ठ जमदग्नि का हवनकाल बीत गया। इससे जमदग्नि का क्रोधाग्नि इतना भड़का कि, जब रेणुका जल लेकर लौटी, तब उसे देख जमदग्नि साक्षात् कालाग्नि होगये।

वे केवल बके झके ही नहीं, किन्तु सब पापों की जड़ क्रोध के यहाँ तक वशवर्ती हुए कि, उन्होंने अपने पुत्रों को एक ऐसी अनुचित आज्ञा दी, जिसका पालन करना उनके पक्ष में बड़ी कठिन बात थी। वह आज्ञा यह थी कि, वे अपनी माता रेणुका का सिर काट डालें। मनुष्य के

सिर पर जब क्रोध का भूत चढ़ता है, तब वह चाहे ऋषि हो, चाहे महर्षि, उसे वह विचारशून्य किये बिना नहीं रहता।

जमदग्नि के चार पुत्रों ने अर्थात् परशुराम के चारों बड़े भाइयों ने पिता की उस दारुण आज्ञा की अवहेलना की,

और उनके कथनानुसार अपनी जननी का सिर न काटा। परन्तु परशुराम ने जो अपने पिता के तपःप्रभाव को जानते थे, पिता की आज्ञा से पितृआज्ञाकारी परशुराम ने चारों बड़े सहोदरों सहित अपनी जननी का सिर काट डाला। इस आज्ञापालन पर जब जमदग्नि प्रसन्न हुए और परशुराम से बोले—"बेटा वर माँगो;" तब बुद्धिमान् तेजस्वी ब्राह्मण-कुमार ने हाथ जोड़ कर, निवेदन किया—

परशुराम—पितृदेव! आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, यह मेरे सौभाग्य का फल है। पुत्र के लिये पिता की प्रसन्नता ही बड़ा भारी वर है। किन्तु आप उसके अतिरिक्त मुझे वर देने को प्रस्तुत हैं। अतः मैं विनयपूर्वक यह वर माँगता हूँ कि, मेरे चारों ज्येष्ठ भाई और मेरी गर्भधारिणी माता पूर्ववत् जीवित हों और वे यह बात भूल जावें कि, मैंने उनका सिर काटा था।

जमदग्नि जी महाराज बुद्धिमान् परशुराम की ये बातें सुन, बहुत प्रसन्न हुए और अपने तपोबल के प्रभाव से परशुराम के इच्छानुसार वर दे, उन्होंने मरे हुए उनके चारों सहोदरों और माता को पुनः जीवित कर दिया। वे पाँचों निद्रागत मनुष्य की भाँति उठ खड़े हुए और जो काण्ड हुआ था, उसका लेशमात्र भी उन्हें स्मरण न था। यह

सब परशुराम की बुद्धिमत्ता का फल था कि, जमदग्नि के आश्रम में पूर्ववत् सुख शान्ति विराजने लगी।

इस घटना के कुछ दिनों पीछे एक दिन हैहय-वंशी राजा कार्तवीर्य जिसका दूसरा नाम सहस्रार्जुन था, आखेट के लिये वन में घूमता फिरता, जमदग्नि के आश्रम में जा निकला। उस समय परशुराम अपने सहोदरों सहित वन में फलफूल समिधा आदि लाने गये थे। अतः आश्रम में रेणुका और जमदग्नि को छोड़ और कोई नहीं था। प्राचीन काल के लोग विशेष कर ऋषि मुनि आज कल के मनुष्यों के समान जिह्वालोलुप न थे। साथ ही अपने शरीर की रक्षा और हिन्दूधर्म्म के अंग गो-सेवा के लिये एक अथवा अधिक गौएँ सदा अपने पास रखा करते थे। परन्तप जमदग्नि के पास भी एक सुन्दर गौ थी, जो बड़ी दुधार थी।

राजा को अपने आश्रम में आया देख, जमदग्नि ने उनका यथोचित सत्कार किया और दूध आदि पिला कर उन्हें तृप्त किया। अनेक गौओं के रहते और अपार धन रत्न के अधीश्वर होने पर भी, कार्तवीर्य की नियत महर्षि की गौ पर डिग गयी और उसने उस गौ के लेने की इच्छा प्रकट की। वह गौ एक प्रकार से जमदग्नि की अन्नदाता

थी। वही सारे परिवार का पालन करती थी। उसके बिना उनके कष्टों की सीमा न रहती, अतः उन्होंने राजा को उस गौ का देना अस्वीकृत किया। परन्तु बालहठ, राजहठ और त्रियाहठ—ये तीन हठ जग में प्रसिद्ध हैं। अतः जमदग्नि के बार-बार मना करने पर भी राजा ज़बरदस्ती बछड़े सहित उस गौ को खोल कर चल दिया।

आश्रम से राजा के चले जाने के कुछ ही क्षणों के पीछे भाइयों सहित परशुराम लौट कर आश्रम में पहुँचे और माता पिता के विषादमय मुखमण्डल को देख, कारण पूँछा। परिवार का पालन करने वाली प्यारी गौ का कार्तवीर्य द्वारा अपहरण किये जाने का दुःखद संवाद सुन, तेजस्वी परशुराम घायल सर्प की भाँति क्रोध में भर, फुफकार मारते, कार्तवीर्य को उसके इस अत्याचार और अन्याय का प्रतिफल देने को, तुरन्त प्रस्थानित हुए। उधर क्रोध में भरे और हाथ में फरसा लिये परशुराम को आते देख, कार्तवीर्य ने सेना सुसज्जित कर, उनका वीरोचित स्वागत किया। पर पितृआज्ञाकारी परशुराम ने सेना सहित अत्याचारी अर्जुन को यमपुर भेज दिया और वे बछड़ा सहित गौ ले आये। उस समय अर्जुन के लड़के भयभीत हो रणक्षेत्र से भाग गये।

गौ को पुनः आश्रम में पाकर परशुराम की माता और पिता को बड़ा हर्ष हुआ। किन्तु जब जमदग्नि को यह मालूम हुआ कि, एक गौ के पीछे परशुराम ने अर्जुन सहित अनेक मनुष्यों को काट डाला है, तब वे अप्रसन्न हो बोले;—

जमदग्नि—बेटा! तुमने यह काम ठीक नहीं किया कि, एक राजा की हत्या की। ब्राह्मणों में जहाँ अनेक पूज्य गुण हैं, वहाँ एक क्षमा भी है। यही क्यों, क्षमा तो ब्राह्मणों की शोभा बढ़ाने वाला एक सुंदर आभूषण है। क्षमाशील ब्राह्मण को सब लोग पूज्य समझ उसका समादर करते हैं। क्षमाशील ब्राह्मण पर भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं। तुमने राजा की हत्या कर, बड़ा भारी पाप किया है। इस पाप का तुम प्रायश्चित्त करो और तपस्या करके भगवान् से अपने इस अपराध की क्षमा माँगो।

पितृआज्ञाकारी परशुराम ने इस आज्ञा को शिरोधार्य कर, तप करने के लिये प्रस्थान किया। एक वर्ष तक वे निरन्तर तीर्थों में घूमा किये। शास्त्र के आज्ञानुसार उन्होंने स्नान दान करके भगवान् को प्रसन्न किया और तत्पश्चात् वे आश्रम में लौट आये।

परशुराम जी ने तो क्रोध में भर सामने युद्ध में सहस्रार्जुन को मार एक अनर्थ किया ही था, किन्तु अर्जुन के पुत्रों ने तो उनसे भी बढ़ कर यह अनर्थ किया कि, परशुराम जी की अनुपस्थिति में जमदग्नि के आश्रम पर आक्रमण किया। उस समय जमदग्नि अग्निकुण्ड के समीप बैठे ध्यान कर रहे थे। अर्जुन के उन पापात्मा पुत्रों ने रेणुका के बहुत गिड़गिड़ाने पर भी ध्यानमग्न जमदग्नि का सिर काट डाला और इस अपने आततायीपन पर प्रसन्न हो हँसने लगे।

उधर पति को मरा देख बेचारी रेणुका छाती पीटती हुई हा राम! हा राम!! हा बेटा!!! कह कर उच्च स्वर से रोने लगी। दूर से माता का बोल सुन, परशुराम जी तुरन्त दौड़े आये। आश्रम में उन्होंने जो लीला देखी उससे उनके मन में दुःख और क्रोध एक साथ ही उपजे। पिता के मृत शरीर की रक्षा का काम अपने भाइयों को सौंप और परसा उठा, परशुराम जी उन नीच अर्जुन कुमारों से बदला लेने के लिये आश्रम से निकले।

क्रोध में भरे विषधर सर्प की भाँति फुफकारें छोड़ते, परशुराम जी अर्जुन की राजधानी माहिष्मती में पहुँचे। परशुराम ने हैहय वंश का समूल नाश करने के लिये हैहय वंशियों को काट काट कर, एक ढेर लगा दिया। तिस पर

भी उनका क्रोध शान्त न हुआ। अर्जुनकुमारों के और अर्जुन के अन्याय एवं अत्याचारयुक्त इन आचरणों का उनके मन पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि, वे क्षत्रीमात्र को अत्याचारी समझ उनके घोर शत्रु बन गये। यहाँ तक कि, उन्होंने इस पृथ्वीमण्डल को क्षत्रियशून्य कर डालने का सङ्कल्प किया। प्राचीन कालके ब्राह्मण स्वभावतः क्षमाशील हुआ करते थे, परन्तु यदि वे एक बार उत्तेजित हो जाते थे, तो फिर उनके क्रोध की सीमा भी न रहती थी। इसीसे प्राचीन काल के लोग ब्राह्मणों के क्रोध से बहुत डरा करते थे। परशुराम को यह बात स्मरण थी कि, माता रेणुका ने पिता जमदग्नि के वियोग में इक्कीस बार अपनी छाती पीटी थी। अतः उन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों को मार कर समन्तपञ्चक देश में, उनके रक्त से नौ कुंड भरे थे। तब कहीं उनका क्रोध शान्त हुआ।

क्रोध के शान्त होने पर परशुराम जी आश्रम में गये, वहाँ उन्होंने पिता का कटा सिर धड़ के ऊपर रखा और पिता को पुनः जीवित करने के अर्थ वे अनुष्ठान करने लगे। अनुष्ठान पूरा हुआ। परशुराम ने सरस्वती नदी में यज्ञान्त स्नान किये। जमदग्नि जी उठे और परशु-राम से पूजे जा कर ऋषिमण्डल में जा विराजे। अब उनकी गणना सप्तर्षियों में की जाती है।

पुराणों के मतानुसार परशुराम जी अब तक महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं। आगे के मन्वन्तर में वे वेद-प्रचारक होंगे। भारतवर्ष के सात प्रसिद्ध पर्वतों में से महेन्द्र पर्वत भी एक है। यह पर्वतमाला उड़ीसा से गोंडवाना तक फैली हुई है। दूसरी ओर उत्तरी सरकार तक उसकी सीमा है। गञ्जाम के समीपस्थ पर्वतश्रेणी को यहाँ वाले आज भी महेन्द्राचल के नाम से पुकारते हैं। पिता के परम भक्त, उनकी आज्ञा को वेदवाक्य के समान अकुंठित भाव से मानने वाले एवं महातेजस्वी परशुराम का निवास-निकेतन यही महेन्द्राचल है।

प्रश्न

१—परशुराम ने अपनी माता और भाइयों का क्यों वध किया ?
२—परशुराम ने इक्कीस वार पृथ्वी को निःक्षत्री क्यो किया ?
३—सहस्रार्जुन कौन था ?
४—जमदग्नि पुनः कैसे जी उठे ?
५—महेन्द्र पर्वत के विषय में क्या जानते हो ?

बयालीसवाँ पाठ

विदुला का सञ्जय को उपदेश

विदुषी—पढ़ी लिखी। वीरांगना—वीर स्त्री। वर्द्धक—बढ़ाने वाला। प्रेतवत—प्रेत के समान। आमर्ष . क्रोध। निषेध—मना। विदीर्ण—फटा। दुष्कृत्य—बुरे काम।

इतिहास प्रसिद्ध महाभारत का युद्ध होने के पूर्व, विदुला नाम की एक विदुषी रानी हो चुकी है। महाभारत नामक ग्रंथ में इस रानी की बहुत प्रशंसा लिखी है। लिखा है कि जिस समय इसका पुत्र सञ्जय शत्रुसेना से परास्त होकर अपना राज्य खो बैठा। उस अवसर पर अपने पुत्र को इस तेजस्विनी वीरांगना ने जो उत्साह वर्द्धक उपदेश वाक्य कहे थे, वे सब प्रकार से समयोचित थे। यह इस वीर माता के सदुपदेश ही का फल था कि, उसके पुत्र ने फिर अपना गया गवाया राज्य लौटा लिया था। विदुला के उस उपदेश का सारांश इस प्रकार है—

"हे वैरियों के हर्ष बढ़ाने वाले! तुझे न तो मैंने और न तेरे पिता ने इस प्रकार का भीरु स्वभाव उत्पन्न किया, फिर तू ऐसा क्यों हो गया? तेरी कहीं गणना नहीं। तेरे पास कोई सामग्री नहीं, तू जीवन भर निराश रहेगा। हे पुत्र! तू स्वयं अपना अपमान मत कर, अपने मन को

उच्च कर, अपने कल्याण के लिये उद्योग कर। हे कापुरुष! पराजित हो कर, तू ऐसा क्यों सो रहा है? अरे देख! तेरे इस प्रकार पुरुषार्थहीन हो जाने से हमारे वैरी लोग आनन्द मना रहे हैं। हमारे बांधव बड़े शोक में निमग्न हो रहे हैं और हे पुत्र! तू प्रेतवत सो रहा है। क्या तेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा है? अरे कापुरुष! शत्रु से पराजित हो कर, तेरा इस प्रकार सोना, तुझे शोभा नहीं देता। हे पुत्र! धर्म का आश्रय ग्रहण कर, पराक्रम दिखला। हे क्लीव! तेरी सम्पूर्ण कीर्ति नष्ट हो गई, तेरा जीना व्यर्थ है। गिरते गिरते भी शत्रु को मारना चाहिये और कभी अपने मन को निरुत्साहित न करना चाहिये। उद्यमपूर्वक अपना स्वत्व, मान और पौरुष प्रकट कर। देख तेरा वंश तेरे कारण ही अधोगति को प्राप्त हो गया है। उसे फिर तू ऊपर को उठा। जिसके नाम को मनुष्य नहीं बखानते उसका जन्म वृथा है।"

"दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धन लाभ में जिसका यश नहीं बखाना गया वह माता का (पुत्र नहीं) मल ही है। लोक में जिसकी निन्दा है, भोजन वस्त्र से जो हीन है, ऐसे बंधु को पाकर बांधव लोग सुख नहीं पाते। हम लोग राष्ट्र से निकाले जा कर, विना जीविका के सम्पूर्ण सुखों से रहित, स्थान भ्रष्ट दरिद्र हो कर, मर जाँयगे।

हे सञ्जय ! वंश के नाशक, श्रेष्ठ पुरुषों में निन्दित तुझ उत्साहहीन, पराक्रमरहित पुत्र को उत्पन्न कर, मुझको बहुत पश्चात्ताप है। मैंने पुत्र के स्वरूप में कुपात्र को उत्पन्न कर, मुझको बड़ा पछतावा है। मैंने पुत्र स्वरूप में कुपात्र को उत्पन्न किया। कोई स्त्री ऐसा पुत्र न जने। जो अरी को क्षमा करता है, अवसर पर जिसको अमर्ष उत्पन्न नहीं होता, वह न स्त्री है और न पुरुष। अति सन्तोष लक्ष्मी का नाशक है। हे पुत्र ! भारी पाप में गिरने से अपने को बचा और हृदय को लोहे का बना कर, अपना राज्य फिर प्राप्त कर, स्त्री के समान जीवन बिताना क्या तुझे शोभा देगा ? जो शूरवीर है, जिसका चित्त उदार है, जो सिंह की भाँति विक्रम से विचरता है, वही सब का रक्षक बनता है। उसी के राज्य में प्रजा को सुख प्राप्त होता है।"

इस पर सञ्जय कहने लगा—"हे माता ! मेरे न रहने पर तू सम्पूर्ण पृथ्वी, वस्त्र, आभूषण, भोग और ऐश्वर्य तथा जी कर क्या सुख पावेगी ?"

इसके उत्तर में विदुला बोली—"हे पुत्र ! निन्दित लोकों को हमारे शत्रु और श्रेष्ठ लोकों को हमारे मित्र लोग पावें। बिना सेवकों के, पराये अधीन हो कर जीवन बिताने वाले, कृपण लोगों की भाँति जीवन बिताने की

तू इच्छा न कर। हे तात! तेरे आश्रय में ब्राह्मण लोग तथा मित्र लोग इस प्रकार से सुख पावैं, जैसे मेघों से प्राणीमात्र सुख पाते हैं। हे पुत्र! तू पौरुष को त्यागना चाहता है, अतः निःसन्देह तू दीनजनों की गति को प्राप्त होगा। जो क्षत्री अपना छात्र तेज प्रगट नहीं करता वह अधम है। हे पुत्र! इस समय तेरे शत्रु सिंधुराज की प्रजा उससे असन्तुष्ट है। इधर उधर से सहायक एकत्र कर पर्वत दुर्ग आदि में घूम और अवसर देखकर पौरुष दिखा। हे पुत्र! तेरा नाम सञ्जय है; किन्तु तुझ में तेरे नाम का गुण न पा कर, मुझे बड़ा खेद है। जब तू बालक था तब एक वृद्ध बड़े पण्डित ब्राह्मण ने मुझ से यह कहा था कि, तेरा यह पुत्र पहले महा विपत्ति में पड़, पीछे अति वृद्धि को प्राप्त होगा। उसके वचन में विश्वास रखती हुई, तेरे जीत की मुझे पूर्ण आशा है। दरिद्रता से बढ़ कर हीन अवस्था कोई नहीं है। क्योंकि पति और पुत्र के वध से भी बढ़ कर दुःखदायक दरिद्रता कही गई है। वह मरने का दूसरा नाम है। मैं उच्चकुल में उत्पन्न हुई हूँ और उच्च ही कुल में व्याही भी गई हूँ। सदा ऐश्वर्य और कल्याण से युक्त तथा पति की आदरणीय रही हूँ। सदैव उत्तम उत्तम आभरण और वस्त्र मैंने धारण किये, सुहृद्वर्ग ने मुझे सदा हृष्ट तथा प्रसन्न देखा है। क्या

अब तू मुझे दुर्गति में देखना चाहता है ? हे सञ्जय ! जब तू मुझे और अपनी भार्या को अत्यन्त दुःखित देखेगा तब तुझे अपने जीवन से भी निराशा उत्पन्न होगी। हमारे नौकर चाकर बन्धु, बाँधव, आचार्य, गुरु, पाधा पुरोहित आदि हमको जीविका रहित पा कर, छोड़ कर चले जा रहे हैं। ब्राह्मण को किसी पदार्थ के देने में निषेध करते हुए मेरा हृदय विदीर्ण होता है। मेरे पति ने और मैंने आज तक कभी किसी ब्राह्मण को विमुख नहीं लौटाया। हे सञ्जय ! निर्धनता में दानादि धर्म का पालन नहीं कर सकेगा। अतः अथाह दुःखसागर में डुबते हुए हम लोगों को तू बचा। हम मरे हुओं को पुनः जीवित कर। तुझ जैसा युवा, रूपवान, विद्वान्, तथा कुटुम्बवान पुरुष भी, जिसका कि यश सर्वत्र विख्यात हो, यदि बैल की तरह दूसरे का बोझ ढोवै तो मैं इसे तेरा ही मरण समझती हूँ। श्रेष्ठ पुरुष अपमान को मरण से भी बड़ा मरण समझते हैं। यदि मैं तुझे शत्रु के वश में उसकी हाँ में हाँ मिलाने वाला, अथवा उसके पीछे चलने वाला देखूँ, तो मन को भला क्यों कर शान्ति प्राप्ति हो ? तेरे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हुआ जो शत्रु का अनुयायी बन कर जीवित रहा हो। हे तात ! पराया अनुचर बनना तुझे योग्य नहीं। मैं तो सनातन उस क्षात्रधर्म को जानती

हूँ जिसकी प्रशंसा बड़े बड़े महापुरुष पहले कर चुके हैं और जिस धर्म को प्रजापति ने क्षत्रियों के लिये बनाया है।"

"क्षात्रधर्म का जानने वाला जो कोई भी क्षत्री इस जगत् में आया है, वह भली भाँति अपनी क्षात्रवृत्ति को विचार कर भय से किसी को न झुके। उद्यम कभी न छोड़े। उद्यम ही पुरुषत्व है, धर्म तथा ब्राह्मणों से सदैव नम्र रहै। दुष्कृत्य करने वालों को सदा मारता रहै, कोई सहायक हो या न हो, जब तक जीवे तब तक इसी प्रकार करता रहे, यही क्षत्रियों का सनातन क्षात्र धर्म्म है।"

सञ्जय कहने लगा—"हे माता! तू बड़ी निर्दयी हो गयी, तूने अपना हृदय लोहे का कर लिया है कि, जो परमात्मा की तरह मुझे युद्ध में नियुक्त करती है। तुझ जैसी विदुषी अपने इकलौते पुत्र से ऐसे वचन कहै। अहह! यह क्या ही विलक्षण उपदेश है। मेरे न रहने पर वस्त्र आभूषण का भोग ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति क्या तुझे सुख देगी?"

विदुला ने उत्तर दिया—"हे प्रिय पुत्र! विद्वान् पुरुषों की सम्पूर्ण अवस्था धर्म और अर्थ के लिये हैं। इन दोनों को विचार करके ही मैंने तुझसे ये सब बातें कही हैं। अब समय आ पहुँचा है, यदि तू अपने कर्त्तव्य

पालन में न लगेगा तो तू निश्चय ही अनर्थकारी होगा। हे सञ्जय! यदि तुझे अपयश देने वाले कामों को करता हुआ देख कर, भी तुझे कुछ न कहूँ तो मेरा पुत्र स्नेह गधी के पुत्र स्नेह के समान हो। ऐसे पुत्रस्नेह को मैं तुच्छ और व्यर्थ समझती हूँ। मूर्ख सेवित तथा सज्जनों से निन्दित किये हुए मार्ग को त्याग। हे सञ्जय! तू मुझे तभी प्रिय जान पड़ेगा जब तू श्रेष्ठों के आचरित मार्ग पर चलेगा। जिन कर्म्मों को महापुरुषों ने किया है, उसी पर चलने वाले सन्तान ही से प्रसन्नता प्राप्त होती है। निरुत्साही, अविनीत, दुष्ट बुद्धि, तथा कुमार्ग सेवी पुत्र से आनन्द मनाने वालों का प्रजाफल निरर्थक है।"

कहा है "उत्तम कर्म्मों को न करते हुए और निष्कर्म्मों के अनुष्ठान में रत अधम पुरुष न इस संसार ही में सुखी होते हैं न परलोक में।"

"हे सञ्जय! क्षत्रिय का तो जन्म ही युद्ध के लिये हुआ है। जय प्राप्त हुआ अथवा युद्ध में मारा जा कर, ही वह इन्द्रलोक में जाता है। हे पुत्र! पहली ही बार की हार से तू स्वयं अपना अपमान न कर। जो पदार्थ नहीं हैं वे प्राप्त हो जाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। हे पुत्र! तू सब प्रकार से योग्य है, पुरुषार्थी है, विचारपूर्वक उद्योग कर

और निम्नलिखित प्राचीन वाक्य पर विश्वास करके प्रयत्न कर—

" उत्थातव्यं, जागृतव्यं योक्तव्यं भूति कर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥ "

अर्थात् मन में ऐसा दृढ़ विश्वास करके कि हमारा कार्य्य अवश्य सिद्ध होगा ही और मन में व्यथा न मानते हुए सदा कल्याणकारी कार्य्यों में लग जाना चाहिये और सदा सावधान तथा चैतन्य रहना चाहिये ।"

इस प्रकार विदुला के समझाने से उसका पुत्र सञ्जय, अपने शत्रु को जीतने का प्रयत्न किया और युद्ध में शत्रु को परास्त कर खोया हुआ राज्य उसने फिर लौटा लिया ।

प्रश्न

१—विदुला कौन थी ?

२—उसके उपदेश का सञ्जय पर क्या प्रभाव पड़ा ?

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad